प्रकाशक—

राष्ट्र भाषा मन्दिर

विक्रेता—

मातृ भाषा मन्दिर

दारागंज प्रयाग

मुद्रक—

नारायण प्रसाद,

नारायण प्रेस, प्रयाग।

"भारत में अंग्रेजी राज" के यशस्वी लेखक,

कर्मवीर श्रीयुत सुन्दर लाल जी

मूल पुस्तक के सम्बंध में लिखते हैं—

कांग्रेस वर्किंग कमेटी के योग्य मेम्बर डाक्टर बी० पट्टाभि सीतारामैया देश के बड़े से बड़े राजनैतिक नेताओं में से हैं। वह अर्थ शास्त्र और राजनीति शास्त्र के भी पूरे पण्डित हैं। उन्होंने अंग्रेजी में इन विषयों पर कई छोटी छोटी अच्छी किताबें लिखी हैं। उनकी The Economic Conquest of India or The British Empire Ltd. अभी हाल में प्रकाशित हुई है। इसमें उन्होंने पिछले १५० वर्ष के अन्दर हिन्दुस्तान में अंग्रेजों की आर्थिक नीति का खाका खींचा है और नमक के महसूल, कपड़े के व्यापार, रुई की चुंगी, ओटावा का मशहूर समझौता, रेल, जहाज, कोयला, सिक्के, नोट, टकसाल, विदेशों के साथ हुंडियावन, बट्टा, डाक महसूल, बङ्क, चेक, बीमा कम्पनियां, बिजली, फौज वगैरा के बारे में अंग्रेजों की नीति जो शुरू से रही

है और जो अब तक है उसे साफ २ और तफसील के साथ २ बयान करते हुये यह दिखाया है कि किस तरह इन सब महकमों के इन्तिजाम में भारत के साथ खुला अन्याय किया जाता है और किस तरह इस देश से ज्यादा से ज्यादा धन लूटना ही अंग्रेजी राज्य का सब से बड़ा उद्देश्य है। इस आर्थिक नीति का ही नतीजा है कि केवल एक कपड़े के ही धन्धे में जब कि सन् १८०३ तक एक गज कपड़ा भी विलायत से भारत में न आता था इस समय हमारा यह धंधा करीब करीब चौपट है, हमारे करोड़ों कारीगर भूखों मरते हैं और हमारा बाजार विलायती कपड़ों से पटा पड़ा है। लेखक ने यह भी दिखाया है कि सन् १९३५ में जो नया कानून पास हुआ है इसके अनुसार कहा जाता है कि शासन के नये अधिकार भारतवासियों को दिये गये हैं उसमें भारत की इन आर्थिक बेड़ियों को और ज्यादा जोरों के साथ कस दिया गया है। और आइन्दा के लिये इसका पूरा इन्तजाम कर दिया गया है कि हिन्दुस्तान का अपना व्यापार या अपने उद्योग धन्धे उससे ज्यादा पनपने न पावें जितना कि अंग्रेजी कौम के लिये जरूरी है और भारत की यह भयंकर लूट बराबर जारी रहे। मेरी यह पक्की राय है और जबरदस्त ख्वाहिश है कि हर भारतवासी जो अंग्रेजी पढ़ सकता है इस पुस्तक को पढ़ लें। जो अंग्रेजी नहीं जानते वह किसी हिन्दुस्तानी भाषा में उसका अनुवाद पढ़ सकें तो जरूर पढ़ें।

नम्र निवेदन

इस पुस्तक के विद्वान लेखक, अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य, राजनीति और अर्थशास्त्र के धुरन्धर विद्वान, आंध्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभापति प्रसिद्ध देशभक्त डा० पट्टाभि सीतारामैया ने अपनी दो पुस्तकों के अनुवाद का अधिकार अत्यन्त उदारता पूर्वक हमें प्रदान करने की जो कृपा की है उसके लिये हम किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकाश करें। हमें दुःख है कि इस पुस्तक का अनुवाद हम बहुत सुन्दर रूप में पाठकों के सामने रख सकने में समर्थ नहीं हुये हैं। जहां तहां कितनी ही अशुद्धियां दिखाई पड़ सकती हैं। फिर भी विषय के महत्व और विद्वान लेखक द्वारा उसके पांडित्य पूर्ण विवेचन के कारण मुझे आशा है कि पाठकों को यह पुस्तक कुछ भाषा संवन्धी भूलें रहने पर भी तनिक भी अरुचिकर न मालूम होगी। भाषा संवन्धी विवशता के लिये पाठक गण हमें अवश्य ही क्षमा करेंगे।

प्रकाशक—

विषय-सूची

भारत का आर्थिक शोषण

महात्मा गान्धी का समाजवाद

(लेखक डा० पट्टाभि सीतारामैया)

—:o:—

आज संसार भर में फैली हुई अशान्ति, युद्ध भावना और बेकारी का कारण यह है कि दुनियां में पश्चिमी सभ्यता का प्रचार है जो कल-कारखानों और फौजी ताकत की नींव पर खड़ी है। आज इस नींव के जोरों से ढहते जाने के कारण पश्चिमी सभ्यता का दिवाला निकल रहा है।

इसके विरुद्ध हमारी प्राचीन सभ्यता शान्ति, अहिंसा, सहयोग और स्वावलम्बन के आधार पर बनी हुई है इससे सम्पूर्ण संसार का कल्याण हो सकता है। म० गांधी ने इस ओर संसार का ध्यान दिलाया है। इस पुस्तक के विद्वान लेखक ने इन बातों पर खूब गहराई से विचार किया है। पुस्तक पढ़ते ही पश्चिमी सभ्यता के सर्वनाश की ओर बढ़ते जाने का पूरा चित्र आंख के सामने खिंच जाता है। म० गांधी के सिद्धान्त रूप में इसका इलाज भी हमें दिखाई पड़ जाता है।

भारत का आर्थिक शोषण

हिन्दुस्तान में अंग्रेजों की आर्थिक नीति

(एक विहंगम दृष्टि)

अंग्रेजों का हिन्दुस्तान को जीतने का इतिहास, संसार के इतिहास का एक गूढ़ भाग है। इसका प्रारंभ कब से हुआ यह ठीक ठीक बतलाना संभव नहीं है। तिस पर भी, हम उन चुस्त और चतुर तरकीबों का पता लगा सके हैं, जिनके कारण धीरे-धीरे हिन्दुस्तान को अंग्रेजों ने अपने राज्य में मिला लिया। अंग्रेजी शासन शुरू होने के पहिले ही से उन्होंने इस प्राचीन भूमि को हस्तगत करने की युक्तियां और योजनाएं निश्चित कर ली थीं।*

अपने देश में खाने और पहिनने की चीजों की बहुत कमी होने के कारण अंग्रेज, योरोप के फ्रेंच, पोर्तुगीज, डच और स्पेनिश आदि राष्ट्रों की तरह हिन्दुस्तान में नयी जमीन और जगह की खोज में आये; और एक दिन, जैसा कि उनका इरादा था, मालिक बन बैठे। वह दिन कौन सा था यह हम नहीं बतला सकते। लेकिन तीन सौ वर्ष की कुछ घटनाओं की जांच करने से मोटे तौर पर एक सीमा निश्चित की जा सकती है। यह सीमा वह है जब कि डच लोगों ने गोलमिर्चि का

---

* पाठकों को यह विचार नवीन मालूम होगा, लेकिन भाई परमानन्दजी की 'Our Earliest attempt at Independence' नामक पुस्तक पढ़ने पर ऐसे ही विचार होना संभव है।

भाव ३ शि० से ८ शि० तक बढ़ाया और इस कारण महारानी एलिज़ाबेथ ने ईस्ट इंडिया कंपनी को मसालों का व्यापार करने के लिये हुक्म दिया। अंग्रेज मसालों की खोज में इधर-उधर घूमने लगे, और हिन्दुस्तान में मसालों की पैदावार देख कर अपने कैंची, चाकू और कपड़े के बदले में मसाले और दूसरी चीजें यहां से ले जाने लगे। इतिहास से यह ज्ञात होता है कि अंग्रेज जो कि यहां व्यापार करने आये थे, १७५७ के पलासी के लड़ाई के बाद उन्होंने इस देश पर शासन करना भी शुरू कर दिया। फिर सौ बरस बाद शासन की बागडोर ईस्ट इंडिया कंपनी से महारानी विक्टोरिया के हाथ में चली गई। इसके बाद, बीस वर्ष के यानी १८७७ तक, जब महारानी विक्टोरिया ने ऐम्प्रेस आफ इन्डिया की उपाधि ली, हिन्दुस्तान के शासन का एकीकरण करने में बिताया गया जिसके कारण ब्रिटेन की हिन्दुस्तान में राजनैतिक सत्ता ही स्थापित न हुई परंतु आर्थिक सत्ता भी दृढ़ हो गई।

प्रत्येक देश में देखा जाता है कि राष्ट्रीय जीवन आर्थिक प्रश्नों में केंद्रित है। लीग औफ नेशन्स के सामने भी यही प्रश्न है कि टैरिफ ड्यूटीज किस तरह से बांधी जाय कि किसी भी देश के अधिकारों और सुविधाओं को कम न करने पर भी राष्ट्रों की आवश्यकताएं दूर हों सकें। परंतु यह तो बीसवीं शताब्दी की बात हुई। विशेष करके महायुद्ध के उपरांत उद्यम और व्यापार में तो इतनी प्रगति और इतना विस्तार हुआ कि आर्थिक प्रश्न ने यूरोप और उसके राजनैतिक प्रश्नों को जो कि अभी तक प्रमुख रहते थे अपने में ही शामिल कर लिया। लेकिन इन बातों से हमें वास्ता नहीं; पाश्चात्य देशों ने डेढ़ सौ वर्षों से बढ़ाये हुए कारखानेदारी ने कुछ लोगों को अमीरी इतनी बढ़ा दी है कि इसके

कारण बड़े कठिन कठिन प्रश्न संसार के सामने उपस्थित हो गए हैं। इसलिये अंग्रेजों की हिन्दुस्तान में आर्थिक नीति की जांच करते समय हमें चाहिये कि पाश्चात्य देशों के उदाहरणों से नसीहतें लेकर अपना राष्ट्रीय पूर्ण स्वराज्य का मार्ग इस प्रकार निश्चित करें जिसमें कि हमें कम से कम खतरे मिलें।

यद्यपि यह अक्षरशः सत्य है कि ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन पिछले शताब्दी के मध्य में समाप्त हुआ तिस पर भी यह भी अकाट्य है कि उसने अपनी जगह ब्रिटिश इम्पायर को दी। किस प्रकार सरकारी कानून और इन्तजामात का खाका विलायती व्यापार को संरक्षण और मदद देता है यह इस बात से मालूम हो सकता है कि हिन्दुस्तान ऊपर से तो सरकारी नौकरों, मेजिस्ट्रेटों और जजों के हाथों में दिखाई देता है परंतु वास्तव में यहां की नीति पर बैंकरों, जहाजी कंपनियां, रेलवे कंपनीज, और बहुत से अंग्रेज कारखानेदारों और व्यापारियों (आयाती और निर्याती) का ही प्रभाव रहता है। हम हिन्दुस्तानियों को, जो कि वर्णाश्रम धर्म को मानते चले आये हैं और उसके अनुसार जाति के हिस्से में पड़ा हुआ पेशा देखते और करते चले आये हैं, यह देख कर आश्चर्य हो सकता है कि शासन करने वाला अफसर व्यापारी होता है, एक व्यापारी प्रीमियर होता है, और लार्ड चीफ जस्टिस एक व्यापारी कंपनी का मेनेजिंग डाइरेक्टर होता है। परंतु यह सच है और ऐसा ही विलायत में होता है। लार्ड रीडिंग जो कि K. C. (Kings Counsel—बादशाह के सलाहगार), और विलायत के सबसे बड़े जज (Lord Chief Justice of England) थे, और बाद को हिन्दुस्तान के वाइसराय बनाये गये, ये जब विलायत

लौट कर गये तो दक्षिण अफ्रीका के खदानों की सिन्डिकेट के प्रेसिन्डेन्ट बनाये गये। जिनका वेतन १५००० पौंड सालाना था। उसी तरह लार्ड बर्कन हेड भी जो बादशाह के सलाहगार (K. C.) थे लार्ड चान्सलर हुए, फिर उसके बाद भारत मंत्री (Secretary of State for India) हुए और अंत में मृत्यु के थोड़े ही पहिले The Greater London and Counties Trust Ltd., के १५००० पौन्ड वार्षिक पर मुखिया बनाये गये। हाउस आफ लार्डस् के ४१२ मेंबरों में से लगभग प्रत्येक मेंबर हिन्दुस्तान से व्यापार करने वाली चार पांच कंपनियों के बोर्ड आफ डिरेक्टर्स में रहता है। ये कंपनिया सभी प्रकार की होती हैं – खेती, साहूकारी, शराब बनाना, बिल्डिंग बनाना, सिमेन्ट, केबल्स, नहर, केमिकल्स, रूई, कोयला, बन्दरगाह, बिजली, इंजिनिअरिङ्ग, तमाशे, खाने की चीजें, होटल, गैस, बीमा, लोहा, जमीन, मोटर, अखबार, तेल, कागज, बागवानी (चाय काफी आदि), सोने और हीरे की खानें, रेलवे, जहाज चलाना और बनाना, तार, टेलीफोन, कपड़ा, ट्रामगाड़ी, ट्रस्ट्स, गाड़ियां आदि आदि। उदाहरणार्थ लार्ड इंचकेप, पी० एण्ड० ओ० नाम की जहाज चलाने वाली कंपनी के प्रमुख थे; और यह कंपनी, भारतीय किनारे के व्यापार में जो कि पूरा ८ करोड़ का है, ५ करोड़ का व्यापार अकेले ही ले जाती है। लार्ड गास्कन (Lord Goschen), जो कि मद्रास प्रांत के गवर्नर थे और वाइसराय के ऐवज पर उस ओहदे पर काम भी कर चुके हैं, हिन्दुस्तान में आने के पहिले एक बीमा कंपनी के डाइरेक्टर थे। यही नहीं कि हाउस आफ लार्डस् का लगभग हर एक मेंबर एक या अधिक व्यापारी कंपनीयों का डाइरेक्टर है बल्कि हिन्दुस्तान की भी बहुत सी

कंपनियों के वोर्ड आफ डिरेक्टर्स में एक या अधिक हाउस आफ लार्ड्स के मेम्बर हैं। इस प्रकार कलकत्ता की जूट की मिलें, कानपुर की ऊन की मिलें, वंबई की कपड़े की मिलें, जंगली पैदावार के प्रबंधक, रेलवे और जहाज की कंपनियां,—इन कंपनियों के डाइरेक्टर्स में राजनीतिज्ञों से लेकर वड़े-वड़े ताल्लुकेदारों का प्रभावशाली स्थान रहता है। अक्सर अखवारों में मजेदार और रोचक खवरें प्रसिद्ध होती हैं जिन पर लोग ध्यान नहीं देते। हाल ही के मद्रास के गर्वनर सर जार्ज स्टेनली, लार्ड स्टेनली के भतीजे, और उस समय के कंज़रवेटिव पार्टी के चीफ व्हिप, २७ दिसंवर १९२९ को वंबई आये। उस अवसर पर अखवार में निम्नलिखित प्रसिद्ध हुआ:—"ये काटन इंडस्ट्री (कपड़े का व्यापार) की दशा का अभ्यास करेंगे; स्वयं भी लखपती हैं; ऐसे अवसर पर इनका पधारना अर्थ पूर्ण है। लार्ड स्टेनली ने कहा है कि लंकाशायर बुरी हालत में है। यह राजनैतिक प्रश्नों की भी जांच करेंगे और हिन्दुस्तान की परिस्थिती के वारे में भिन्न-भिन्न प्रमुखों से ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त करेंगे।"

यह वात अधिक लोगों को न मालूम होगी कि लार्ड स्टेनली, जो कि उस समय उप-भारत मंत्री थे, लार्ड डर्वी के सवसे वड़े लड़के हैं; और ये लार्ड डर्वी लंकाशायर के सवसे वड़े कपड़े की मिलों के मालिक हैं। १९३० में लंदन की एक खवर इस प्रकार थी:—"पिछले कुछ महीनों में सर आस्टिन चेंवरलेन, विदेश के मिनिस्टर, और सर लेमिंग वर्दिंगटन इवान्स, लड़ाई के मिनिस्टर, ये दोनों Greater London and Counties' Trusts, Ltd. के डाइरेक्टर्स हो गये हैं। लार्ड वर्कनहेड इसी के चेअरमैन हैं। सर फिलिप सनक्लिफ, वोर्ड आफ

ट्रेड के मिनिस्टर, नवीन स्थापित प्रोडूसर्स (Producers') एसोसिएशन के चेअरमैनी के लिये आमंत्रित किये गये हैं। लार्ड ब्रेन्टफोर्ड ने (पहिला नाम सर जाइनसन हिक्स, मिनिस्टर आफ होम अफेअर्स) नारदर्न एशुअरेन्स कंपनी के बोर्ड में जगह पा ली है; और सर आर्थर स्टील मेटलैन्ड. मिनिस्टर आफ एग्रीकल्चर, युनाइटेड डोमीनियन्स ट्रस्ट के डाइरेक्टर हैं; और सर सेम्युअल होर, मिनिस्टर आफ एअर, दो बीमा कंपनियों के बोर्ड आफ डाइरेक्टरों में हैं।"

राइटर (संवाददाता) एजेन्सी की एक मजेदार खबर इस प्रकार है।

लंदन, २५ मई।

२५ मई १९३७ को इम्पायर काटन ग्रोइंग कारपोरेशन की सालाना मीटिंग में लार्ड डर्बी ने एक कड़ी अपील की। लार्ड डर्बी ने कहा—"जब कि हम हिन्दुस्तान से रुई खरीदकर उसके किसानों की भरसक मदत कर रहे हैं तो उसको भी इस बात की कोशिश करना चाहिये कि हमारे देश से वहां जाने वाले कपड़े की तादात को और बढ़ावे। हमको इस बात की कोशिश करना चाहिये कि देशों में मेल रहे, लेकिन वह मेल दोनों तरफ से होना चाहिये न कि एक ही तरफ से।"

इस मौके पर जब कि हिन्दुस्तान और विलायत में व्यापारी समझौता हो रहा है लार्ड डर्बी के बड़े लड़के लार्ड स्टेनली का उप-भारत मंत्री के जगह पर नियुक्त होना बिना मतलब के नहीं है। क्योंकि इनके पहिले के उप-भारत मंत्री, मिस्टर बटलर के बारे में समझा जाता था कि ये लंकाशायर के पक्ष में विशेष रुचि नहीं रखते।

एक और खबर है:—सर राबर्ट हार्नी, जो चान्सलर आफ एक्स-चेकर थे, ग्रेट वेस्टर्न रेलवे के फिर चेयरमैन हो गये हैं। ये और लार्ड ग्रामर, पी० एन्ड० ओ० कंपनी के डाइरेक्टर्स थे। सर बेंजामिन राबर्टसन, आई० सी० एस० जो कि मध्य प्रदेश (C. P.) में चीफ कमिश्नर थे, बंगाल नागपुर रेलवे के एक डाइरेक्टर हैं। राइटर एजेन्सी ने १ जनवरी, १९३० को अमेरीका से निम्नलिखित संवाद तार से भेजा:—

"हिन्दुस्तान की प्रगति को हम अमेरीका निवासी सहानभूति के दृष्टि से देख और समझ रहे हैं। हम हिन्दुस्तान को स्वामी और योगियों का या बाल विवाह और विधवाओं को जला कर भस्म करने वाला ही देश नहीं समझते बल्कि इससे भी ज्यादा इसके बारे में जानते और समझते हैं।" इस तरह हिन्दुस्तान और अमेरीका में व्यापार बढ़ाने की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए हेरल्ड ट्रिब्यून ने लिखा है। वह आगे लिखता है "हमें सिर्फ इसी से वास्ता है कि वहां की दशा स्थिर रहे, और इस बारे में अंग्रेजों का काम ऐसा रहा है और रक्खा जा रहा है कि उनके लिये यह गर्व की बात है। १९३६ के मार्च महीने में मिस्टर निक्सनने जर्मन ट्रेड फेडरेशन में बोलते समय कहा कि "दुनियां के तैयार माल के लिये हिन्दुस्तान एक अच्छा बाजार है।"

सर जार्ज शूस्टर फाइनेन्स मेंबर के काम से सेवा मुक्त होकर वेस्टमिनिस्टर बैंक के डाइरेक्टर हुए; और इनसे पहिले के फाइनेन्स मेंबर, सर बेसिल ब्लैकेट, मिडिल बैंक के डाइरेक्टर हुए। थोड़े ही पहिले के फाइनेन्स मेंबर सरजेम्स ग्रिग मिडिल बैंक से ही आये थे। साइमन कमी-

---

* चान्सलर आफ एक्सचेकर कोषाध्यक्ष या खजानची।

शन हिन्दुस्तान में यहां के राजनैतिक अवस्था की जांच करने को भेजा गया था। लेकिन उसमें के धूर्त मेंबर राजनैतिक अवस्था के बजाय हिन्दुस्तान के बाजार की पूरी जानकारी हासिल करने में ही लगे हुए थे। कमीशन के एक मेंबर लार्ड बर्न्हम की राय से 'इंडो-ब्रिटिश व्यापार के लिये पंजाब सबसे अधिक सुबीते का है; और उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि मोटर गाड़ियों की हिन्दुस्तान में अधिक खपत हो सकती है।' आप आगे कहते हैं "हिन्दुस्तान के बाजार की जांच सिर्फ एजेन्टों के जरिये ही नहीं होना चाहिये बल्कि खुद मालिकों को भी आकर देखना चाहिये कि कौन कौन सी चीजें यहां अच्छी निगाह से देखी जाती है या पसंद की जाती है और किन चीजों को लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं।" इस प्रकार हम नही जानते कि कितनी चीजें—बहुत सी तो उनमें बहुत मामूली और रोजमर्रा की भी होती हैं—हिन्दुस्तान पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से लादी जाती हैं। अभी कुछ ही दिन हुए होगें जब कि नीलगिरी एग्रीकलचररिस्ट्स एसोसिएशन ने मद्रास गवरमेंट से अनुरोध किया था कि वह विदेश से यहां आयात होने वाले आलू पर आयात-कर के जरिये रोक लगावे।

१८९४ में मद्रास में हुई कांग्रेस के अधिवेशन में मि० इअर्डले नार्टन ने कुछ मिसालें पेश करके बहुत ही अच्छी तरह से साबित किया कि व्यापारी सुविधाओं के मामलों में भारत मंत्री और उसकी काउन्सिल हिन्दुस्तान के हित रक्षा की दृष्टि से बिलकुल निकम्मी सी रहती है। अपने दलील में आपने ये मिसालें पेश कीं :—

लार्ड केनिंग का आक्षेप और विरोध रहने पर भी कलकत्ते की दक्षिण पूर्वी रेलवे को ५ फी० सदी सालाना मुनाफे की गारन्टी दी गई,

और जब यह कंपनी दिवालिया हो गई तब १५ लाख पौन्ड कीमत देकर खरीद ली गई। मद्रास इरिगेशन (सिंचाई) कंपनी के १० लाख पौंड पूंजी पर ५ फी सदी सालाना मुनाफा सरकार ने गारन्टी किया था। लेकिन इस कंपनी की आय इतनी भी न हो सकी कि वह अपना खर्च चला सके इसलिये भारतीय सरकार के नाम पूरे दाम पर कंपनी खरीद ली गई। एलिफिन्स्टन लैन्ड एन्ड प्रेस कंपनी के शेअर्स, जिनकी बजारू कीमत ३३९ रु० फी शेअर थी, १,००० रु० फी शेअर के हिसाब से हिन्दुस्तान के नाम पर खरीदी गई। इस तरह हिन्दुस्तान के द्रव्य की लूट होती रही, और भारत मंत्री और उसके काउन्सिल के १२ मेंबर जिनका १,२०० पौंड सालाना वेतन हो, कुछ न कर सकें, तो हिन्दुस्तान की दृष्टि से अच्छा यही है कि इन जगहों को तोड़ दिया जाय।

Iron & steel Federation, लंदन के वार्षिक भोजन के समय लार्ड डडले ने बताया कि प्रिन्स आफ वेल्स ने १९३१ में, जब कि वे ब्रेजील गये हुए थे, विलायत के फर्मों के लिये ३० लाख पौंड का आर्डर प्राप्त कर लाये। रायो डी जनेरिओ (ब्रेजील की राजधानी) में वहां के अधिकारियों से और इनसे भेंट हुई उसी के फल में ३० लाख पौंड का आर्डर अंग्रेजों को मिल गया, जो कि ब्रेजील की रेलों में बिजली लगाने का था। प्रिन्स आफ वेल्स ने खुद ज़रा शर्माते हुए कहा कि "मेरे भ्रमण के समय मैंने और (ब्रिटिश) सरकार ने मिलकर कुछ कन्ट्रैक्ट प्राप्त किये।" जिन प्रिन्स आफ वेल्स का जिकर ऊपर आया है वे ड्यूक आफ विन्डसर हैं।

विलायत के एक सेवामुक्त मिनिस्टर हर ऐरिक ए० गेडीज का

(अब इनका देहान्त हो गया है). दी डनलप रबर टायर कंपनी से घनिष्ट संबंध था। डनलप रबर टायर कंपनी, इंपीरियल केमिकल्स, (जिसके कि चेअरमैन हिन्दुस्तान के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड रीडिंग थे,) और बरमा शेल कंपनी के बारे में ऐसा कहा जाता है कि केंद्रीय सरकार से (Central Government) इनको करों में बट्टा मिलता था। केंद्रीय सरकार के खर्च का वह हिस्सा जिसके ऊपर असेंबली का कोई अधिकार नहीं रहता (Non Capotable Grant) उसमें से इस बट्टे की पूर्त्ति की जाती थी। इसके साथ एक और बात जानने की है कि सर ऐरिक ए० गेडीज इंपीरियल एअरवेज़ के भी चेअरमैन रह चुके हैं।

पंजाब प्रांत की शोरे की खदानों का इंपरियल केमिकल्स को ४० साल के लिए पट्टा (Lease) मिल गया है। हिन्दुस्तान को बिना बताये हुए ही चुपचाप विलायत में इस कंपनी की स्थापना हो गई, और १९३४ में असेंबली में पूंछने पर यह बतलाया गया कि इसकी स्थापना हिन्दुस्तान के भलाई के लिये ही की गई है।

कभी-कभी विलायत के अखबारों में सच-सच बातें भी पढ़ने में आती है कि यदि वे हिन्दुस्तान को खो बैठेंगे तो विलायत कहीं का भी न रहेगा। फरवरी १९३२ में विलायत के 'डेली मेल' पत्र में निम्न लेख प्रकाशित हुआ।

"शनीचर को लार्ड इरविन का दिया हुआ भाषण हिन्दुस्तान की परिस्थिति सुलझा न सका; और न हिन्दुस्तानियों के इस विश्वास को हटा सका कि अंग्रेजों को परेशान करके या प्रार्थना करके थोड़े दिनों में डोमीनियन स्टेटस प्राप्त हो सकता है। इसलिये यह बहुत ही आव-

श्यक है कि हमेशा के लिये एक झूंठा विश्वास हट जाये। इसलिये हिन्दुस्तान को डोमीनियन स्टेटस देने को कोरी बातों को राजनीतिज्ञों ने एक दम बंद कर देना चाहिये। और जो इस खतरनाक नीति को केवल खेलवाड़ ही की दृष्टि से देखते हों उन्हें सार्वजनिक जीवन से एक दम निकाल देना चाहिये।

"विलायत के हित के लिये सबसे अधिक महत्व की बात है हिन्दुस्तान को अपने हाथ में रखना। और कोई भी प्रश्न इतने महत्व का नहीं है। वास्तव में सच तो यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य की जान हिन्दुस्तान ही है। इस देश का व्यापार हम लोगों के लिये अनिवार्य है। अगर हमारा हिन्दुस्तान में का व्यवहार हमारे हाथ से चला जाय तो बस फिर लंकाशायर का दिवाला तुरंत ही बोल जायगा और वहां के मजदूरों को भूखों मरना पड़ेगा। पिछले साल १६३१ हिन्दुस्तान में विलायत का ८३,९००,००० पौंड कीमत का माल गया। संसार का और कोई भी देश ऐसा नहीं है जो अधिक नहीं तो इसके बराबर ही विलायती चीजें लेता हो। इसी व्यापार को हमसे छीनना हिन्दुस्तान के क्रांतिकारी नेताओं का एक बड़ा उद्देश है।

"साइमन कमीशन के सामने दिये हुए सबूतों के अनुसार विलायत का हिन्दुस्तान में व्याज् लगाये हुए द्रव्य की तादात १,०००,०००,००० पौं० (१ अरब है)। इस के निस्बत हमारे क्रांतिकारी नेताओं के विचार प्रसिद्ध ही है। वे इस कर्जे को देना नहीं चाहते। वे विलायत के द्रव्य से बने हुए कारखाने, मिलें, चाय वगैरह के खेत आदि सब हड़प

---

* यहां क्रातिकारी से बम चलाने वाले क्रांतिकारियों से नहीं है।

कर डालना चाहते हैं। यदि कहीं हमारा इतना द्रव्य डूब गया तो विलायत का सिर फिर कभी ऊंचा न उठ सकेगा।

"हिन्दुस्तान को स्वराज्य देने की नीति एकदम छोड़ देनी चाहिये। क्योंकि डोमीनियन स्टेटस से, सिवाय अधाधुंदी और सत्यानाश के और कुछ नतीजा हासिल नहीं हो सकता। पुरानी प्रथा और प्रणाली से देश में बीसवीं शताब्दी के विधान चलाने की नीति चीन देश में अजमाई जा चुकी है, जिसका प्रणाम बीस वर्ष तक आंतरिक झगड़े (Civil War) और बरबादी के और कुछ न हुआ। इसके लिये सिर्फ दो ही मार्ग हैं। एक तो यह कि हम अलग हो जांय और हिन्दुस्तान को वहां के रजवाड़ों के हाथों में सुपुर्द कर दिया जाय। रजवाड़े कांग्रेस के हिन्दू वकीलों को बहुत जल्द दुरुस्त कर देगें। और दूसरा रास्ता है हिन्दुस्तान में जम कर शासन करने का, और इसी रास्ते पर हमारा देश चलेगा।"

ऊपर दिये 'डेली मेल' नामक पत्र के लेख से यह अच्छी तरह मालूम हो जाना चाहिये कि वास्तव में अंदर की बात क्या है। और इसमें कोई आश्चर्य भी न होना चाहिये जब हम देखते हैं कि विलायत के बड़े से बड़े ओहदे वाले बड़े-बड़े व्यापारी-सेठ होते हैं। मिस्टर मान्टेगू का, जो लार्ड चेम्सफोर्ड के वाइसराय होने के समय भारत मंत्री थे, मान्टेगूज नामक चांदी का रोजगार करने वाली बड़ी फर्म से घनिष्ट संबंध था। मि० बाल्डविन, विलायत के प्राइम मिनिस्टर, जिनके जमाने में अष्टम एडवर्ड ने गद्दी छोड़ दी, लोहे के व्यापारी थे। हिन्दुस्तान के वाइसराय लार्ड विलिंगडन जब मद्रास प्रांत के गवर्नर थे तब उनकी धर्मपत्नी लेडी विलिंगडन सनबीम मोटर गाड़ियों को राजाओं,

महाराजाओं तथा उनके दीवानों में प्रचार करने में काफी दिलचस्पी लेती थीं। इसका कारण यह था कि लेडी विलिंगडन के पिता काउन्ट ब्रेसी उसके मालिक थे। बहुत दिन न हुए होंगे जब लार्ड बर्कनहेड भारत मंत्री थे। ये महाशय जब इस ओहदे पर काम कर रहे थे, उस काल में विलायत घूमने गये हुए हिन्दुस्तानी राजा-महाराजों में रोल्स राइस नाम की बेशकीमती मोटर-गाड़ी खपाने की काफी कोशिश करते थे। इतना अंग्रेजों के बारे में जानने के बाद यह जरूरी हो जाता है कि एंग्लो-इन्डियनों के बारे में भी थोड़ी बातें मालूम हों। एंग्लो-इन्डियन व्यापारी न तो जमीन्दारी में अपना रुपया लगाते हैं और न घर बार बनवाने में खर्च करते हैं। बल्कि इस तरह की कुछ बातों में पैसा लगाने के लिये उनको मनाई भी है। ये लोग अपना द्रव्य मिलों और कंपनीयों के शेअर्स में लगाते हैं चाहे वह विलायती हो या देशी—सी० पी० के सर बेंजामिन राबर्टसन, I. C. S. ने इतना काफी रुपया बेंगाल नागपूर रेलवे में लगाया कि वे उसके डाइरेक्टर भी हो गये। इसलिये जब विलायत और हिन्दुस्तान में किसी भी चीज के बारे में झगड़े का प्रश्न खड़ा होता है तो एंग्लो-इन्डियन्स विलायत की बाजू ही लेते दिखाई पड़ते हैं क्योंकि अधिकतर उनका पैसा वहीं लगा हुआ है; उसी तरह जब अंग्रेज और हिन्दुस्तानी का सवाल पैदा होगा तो उस समय भी वे अंग्रेजों की तरफदारी करेंगे। ऊपरी बातों से शायद यह मालूम हो कि अंग्रेजों के राजनैतिक उद्देशों के विरुद्ध एक दलील पेश की गई है इसलिये यह जरूरी है कि इन बातों के लिये काफी सुबूत भी दिये जांय। आगे के पन्नों में इसके प्रमाणों को एकत्रित करने का प्रयत्न किया गया है।

नमक

सबसे पहिले नमक को लेकर धीरे-धीरे हम उस प्रबंध तक पहुँचेंगे जिसे शांति और सुव्यवस्था के अच्छे नाम पर अधिकतर अशांति और अव्यवस्था फैलाने के ही काम में लगाया जाता है। हिन्दुस्तान में अंग्रेजों की नीति पूरी तरह से इस ढंग से नियोजित है कि अंग्रेजों के आर्थिक हित में किसी भी तरह की बाधा न पड़ने पावे। १९०३ में जब स्वर्गीय गोखले राजनीति में भाग लेने के लिये आगे हुए तब उनका सरकार के विरुद्ध पहिला आक्षेप नमक के कर का ही था जिसे उन्होंने अनावश्यक, अन्यायी और अमानुषिक समझा। भारतीय सरकार ने १ मन नमक पर २॥) रु० एक्साइज* कर लगाया था। लेकिन यह इसलिए नहीं कि नमक पैदा करने वाले उससे फायदा उठाते हैं या हिन्दुस्तान के बाहर भेजते हों। नमक फैक्टरी के बाहर जाने के पहिले ही उस पर २॥) रु० फी मन के हिसाब सरकार वसूल कर लेती थी। इसका नतीजा यह हुआ कि नमक का भाव बेशुमार बढ़ गया। सन् १९०३ से इस कर को हटाने के लिए बार-बार कोशिश करते रहने पर भी १।) रु० फी मन के नीचे इस कर को कम करने में हमारे नेता सफल न हुए। १९२९ में असेंबली ने पास किया कि इस कर को घटाकर एक रुपया फी मन कर दिया जाय। लेकिन वाइसराय ने अपने विशेष अधिकार से जनता

---

* एक्साइज कर (Excise duty)—देशी वस्तुओं के उत्पादन पर लगाये हुए कर को एक्साइज कर कहते हैं।

के प्रतिनिधियों के पास किये हुए प्रस्ताव के खिलाफ इस कर को १।) रुपये ही रक्खा। क्या किसी ने अपने मन में विचार किया है कि वाइसरायों में नेक समझे जाने वाले लार्ड इरविन ने नमक ऐसी रोज उपयोग में आने वाली वस्तु पर, असेंबली के विरुद्ध होने पर भी, अधिक कर क्यों बैठाया ? अगर नमक, भांग या गांजा की तरह नशा लाने वाला हो या अफीम की तरह पीनक लाने वाला हो या कोकीन की तरह कामोत्तेजक हो या शराब की तरह बेलगाम बनाने वाला हो तब तो समझ में आता है कि सरकार का करना ठीक हुआ, और सिर्फ ठीक ही नहीं हुआ बल्कि इस पर और भी ज़्यादा कर बढ़ाना बुरा न होगा। लेकिन जब नमक जीवन के लिये बहुत आवश्यक है चाहे वह आदमी हो या जानवर तब तो अच्छा यही है कि इस पर से कर एकदम हटा देना चाहिये। स्वर्गीय गोखले जी के कारण पहिले पहल लार्ड कर्जन के समय नमक का कर घटाया गया। इस थोड़ी सी कमी ने नमक की खपत काफ़ी बढ़ा दी, यह तो सभी लोगों को मालूम होगा। जानवरों के लिये १० सेर चना उबाला जाय तो उसमें डेढ़ सेर नमक की जरूरत होती है। लेकिन कितने किसान या तांगे-बग्घी वाले अपने घोड़ों को दिये जाने वाले चने में ऊपर दिये हुए हिसाब से नमक मिलाते हैं ? इसका मुख्य कारण है नमक की मँहगी। हिन्दुस्तान के समुद्री-किनारे की लंबाई ४,५०० मील है, और यहां नमक की बड़ी-बड़ी खाने हैं, खारे पानी की झीलें भी हैं, नमक के पहाड़ भी हैं और ऐसे कुएं भी हैं जिनका पानी समुद्र की तरह खारा होता है—इतना नमक हिन्दुस्तान में होने पर भी बाहर से मंगाना पड़े; और समुद्री-किनारे पर रहने वाले लोगों को समुद्री नमक बनाने पर ६ महीने की कड़ी सजा

और ५००) रु० दंड हो इससे अधिक आश्चर्य की बात और हो ही क्या सकती है।

मि० ब्लन्ट लिखते हैं:—"यह सही है कि ज्यादा गरीब लोग ही ऐसे हैं कि जिनको भरपूर नमक नहीं मिल पाता, परंतु शोक के साथ कहना पड़ता है कि दक्षिण हिन्दुस्तान में ऐसे ही लोग अधिक हैं। दक्षिण में इसका परिणाम एक और कारण से अधिक पड़ता है कि वहां नमक प्राकृतिक दशा में बहुत पाया जाता है; लेकिन कानून के डर से वे उसे छू तक नहीं सकते, लेने की बात तो दूर ही रही। भूँखे आदमी को यूंही काफी तकलीफ रहती है लेकिन अगर उसके सामने खाने की चीजें भी रख दी जांय पर खाने न दिया जाय तब तो उसके तकलीफ का कोई ठिकाना ही न रहेगा। बहुत से देहातों में जहां-जहां मै गया, गांव वालों ने मुझे बताया है कि नमक की मंहगी के कारण वे अपने चौपायों को ऐसी जगहों में हांक ले जाते थे जहां वे चुपचाप नमक चाट सकें। लेकिन जल्दी ही पहरेदारों ने उनकी चाल मालूम कर ली। इस पर सरकार ने ऐसा हुकुम ही अधिकारियों को भेज दिया कि जमीन की सतह पर पाये जाने वाले नमक को या तो खोद डालो या उस पर और मिट्टी डाल कर ढांक दो। कुछ दूसरे भागों में, मैंने सुना है कि, नमक न मिलने के कारण उनको एक तरह के कोढ़ का रोग हो गया। लोगों को नमक बेंचने की कीमत से उसे बटोरने की कीमत से १,२०० २,००० फी सदी ज्यादा खर्च करनी पड़ती है।"

मिस्टर रामसे मेकडोनल्ड, जो कि विलायत के प्राइम मिनिस्टर थे, का कहना है कि "नमक पर कर लगाना जनता को चूसना और उस पर अत्याचार के समान है; और अगर लोग इस बात को समझ जायेंगे

तो उसका परिणाम जनता में अशांति फैलना होगा। इसका कारण यह है कि आज कल का अंग्रेजी शासन उस कंपनी सरकार से उत्पन्न हुआ है जो इस देश पर सिर्फ शासन ही करने नहीं आई थी बल्कि आर्थिक शोषण करना भी उसका मुख्य उद्देश्य था।"

थोड़े ही दिन हुए, लगभग सन् १९२९ में, टैरिफ बोर्ड को इस बात की जांच करने की आज्ञा दी गई थी कि आया हिन्दुस्तान में इतना काफी नमक बन सकता है जो कि पूरे देश की खपत को पूरा कर सके? यह कहा जाता है कि जब बंगाल में इसकी जांच हो रही थी तो लोगों ने गंदे देशी नमक के बजाय चेशायर (Cheshire) का सफेद नमक को ज्यादा पसंद बतलाया। इसके अनुसार एक सरकार की ओर से रिपोर्ट प्रसिद्ध की गई जिसमें बताया गया कि कम से कम बंगाल के लिये ही देशी नमक तैयार करना व्यर्थ है क्योंकि वहां के लोग सफेद नमक ज्यादा पसंद करते हैं। वास्तव में यह बड़े आश्चर्य की बात है कि हमारे देश में एक ऐसी लहर फैली हुई है जिसके असर से हमारे कुछ भाई सफेद नमक, पालिश किया हुआ सफेद चावल, जावा या जर्मनी की बिलकुल कांच की तरह साफ और सफेद चीनी, दूध के तरह सफेद विदेशी कपड़े आदि चीजों को ज्यादा पसंद करते हैं। कुछ माई के लाल तो इनसे भी बढ़े चढ़े होते हैं; उनको स्त्री भी चाहिये तो उस पर भी मेड-इन-इंग्लैंड की मोहर लगी हुई। जरा ध्यान पूर्वक देखने से यह मानना ही पड़ेगा कि ऊपर दी हुई खाने की वस्तुएं शरीर को हानि ही पहुँचाने वाली हैं। और अंत की दो चीजें यानी विदेशी कपड़ा और विदेशी बीबी से कितना नुकसान है इसे बताने की आवश्यकता नहीं है। विदेशी कपड़ा देश को गरीब बनाता है और

विदेशी बीवी घर का दिवाला निकालती है।

अस्तु, अब हम यह देखें कि ६ हजार मील दूर विलायत से जहाज की सफर करता हुआ आने वाला नमक खास हिन्दुस्तान ही में समुद्र किनारों और ऊपर निर्दिष्ट जगहों में मिलने वाले नमक से इतना अधिक सस्ता क्योंकर पड़ता है? इसके साथ ही यह भी एक और आश्चर्य की बात है कि वाइसराय महोदय ने भी पुराने १ रु० ४ आ० फी मन के दर को ही तसदीक किया; और असेंबली को प्रसन्न रखने के लिये ही क्यों न हो ४ आ० फी मन दर घटाने के लिये तैयार न हुए। इसमें क्या भेद है? कौन सा रहस्य छिपा हुआ है? क्या सिर्फ ४ आ० कम कर देने से आसमान फट जाता, या भूकंप आ जाता या महाप्रलय ही हो जाता? कि ब्रिटिश साम्राज्य नेस्तनाबूत हो जाता? वास्तव में बात यही है। पहिली तीन दुर्घटनायें हों या न हों, उससे उन्हें कोई मतलब नहीं, लेकिन चौथी बात होने से अर्थात् ४ आ० दर में कम कर देने से उनके आर्थिक हित में बाधा अवश्य पहुंचती थी।

यह कैसे हो सकता है इसे समझने के लिये हमें कुछ थोड़ा सा हिन्दुस्तान के आयात निर्यात के बारे में जानना आवश्यक है। हिन्दुस्तान ३१६* करोड़ रुपये कीमत का माल निर्यात करता है, और २१६ करोड़ रुपये कीमत का माल आयात करता है। तो कुल जमा ६० करोड़ का फरक हुआ। इतना ही नहीं इसके साथ एक और बात ध्यान में रखना चाहिये कि निर्यात होने वाला सब माल कच्चा होता है, जैसे रुई, गेहूँ, चाय और काफी, चमड़ा, तेलहन, खनिज पदार्थ (लोहा आदि)। इन चीजों को रखने के लिये

---

*ये अंक १९२५—२६ के हैं।

ज्यादा जगह लगती है। लेकिन विलायत से यहां आने वाला जितना भी सामान होता है वह सब तैयार माल होता है इसलिये उसे रखने में कम जगह लगती है। इसके लिये एक छोटा-सा उदाहरण काफी होगा। एक गोदाम भर रुई में कितनी गांठें कपड़ा तैयार होगा? बहुत होगा १० या १५ गांठें। यह हुई आकार के हिसाब से आयात निर्यात की तुलना। अब उसको मूल्य के हिसाब से जांचें। ऊपर दिये हुए अंकों से हमें यही मालूम होता है कि हम ज्यादा कीमत का माल भेजते हैं बनिस्बत उनसे खरीदने के। आशय यह है कि चाहे कीमत के हिसाब से देखिये या आकार के हिसाब से बात यही है कि हिन्दुस्तान से विलायत जाते वक्त जहाज का कोना-कोना ठसा रहता है लेकिन वहां से आते समय काफी बड़ा हिस्सा खाली रहता है। अगर आधा या कम भरा हुआ जहाज बीच समुद्र में से हो कर आये तो उसे लहरों और भयंकर तूफानों की चपेटों से टूटने और डूबने का काफी खतरा रहता है, इसलिये यह आवश्यक है कि जहाज को काफी वजनी रखना चाहिये। इसलिये किसी न किसी तरह का कील बैलेस्ट (जहाज को भारी करने के लिये भरी हुई चीजें) भरना जरूरी है। अंग्रेजों के शासन के शुरू में विलायत से आने वाले जहाज मिट्टी को कील बैलेस्ट की तरह लाते थे। और शायद यह बहुत लोगों को मालूम न होगा कि कलकत्ते का शानदार चौरंगी बाजार जिस जगह पर बसा है पहिले वहां एक नहर थी जो कि हुगली से कालीघाट तक गई हुई थी। लंदन से लाई हुई मिट्टी इसी नहर को पाटने में लगाई गई है। विलायत से आने वाले जहाज जब कहीं हफ्तों लीवरपूल के बंदरगाह में राह देखते थे, तब कहीं थोड़ा बहुत सामान उनको मिलता था। इसलिये बची

हुई जगह में मिट्टी ही भर लेते थे जिसमें कि जहाज भारी हो जाय।

इस समस्या को दूर करने के लिये, सौ बरस से थोड़ा और पहिले एक साल्ट (नमक) कमीशन, नामक कमीशन नियुक्त किया गया। उन्होंने यह राय दी कि मिट्टी की जगह नमक भर कर जहाजों को भारी किया जाय। लेकिन इससे सवाल यह उठा कि इस नमक का क्या किया जाय? उपाय यही था कि इसे बेंचा जाय। लेकिन जब तक कि हिन्दुस्तानी नमक पर कर नहीं लगाया जाता विलायती नमक कैसे बिक सकता? इसके अनुसार देशी नमक पर ३ रु० ८ आ० फी मन के हिसाब से कर लगाया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्तानी नमक की बिक्री बंद हो गई। खास कर दक्षिण भारत पर इसका बहुत बुरा परिणाम हुआ क्योंकि कारोमंडल और मलाबार समुद्र तट से हिन्दुस्तानी जहाजों पर वहां का नमक बंगाल भेजा जाया करता था और लौटाते समय वे बंगाल का चावल ले आते थे। परंतु विलायती नमक आजाने से आपसी अदल बदल के व्यापार को और उसे ढो ले जाने वाले जहाजों की आमदरफ़ को गहरा धक्का लगा। मछलियां पकड़ने वालों का नमकीन मछलियों का व्यापार चौपट हो गया क्योंकि अब वे लोनही मिट्टी से नमक नहीं बना सकते थे जिसे कि वे मछलियों को नमकीन बनाने में इस्तेमाल करते थे। अपने कांजी के लिये भी उनको नमक नहीं मिल सकता था गो कि समुद्र के किनारे पर ही वे लोग रहते थे। इस रोक की उन्होंने एक तोड़ निकाली। घास को खारे पानी में भिगोकर हाथ से घर ले आते थे, फिर उसे जलाकर उसके राख को कांजी में मिलाया करते थे, जिससे उनकी कांजी नमकीन हो जाती थी। लेकिन उनको नमक के कानून के अनुसार

५०० रु० दंड और ६ महीने की सजा दी गई। इनका पुराना खानदानी व्यापार ठेकेदारों के हाथ में चला गया जो न तो मछलियां पकड़ते थे न नमक ही बनाते थे; पर नमक विभाग के अफसरों की देख रेख में निश्चित जगहों ही पर व्यापार कर सकते थे। इन घटनाओं को हुए एक शताब्दी हो गई. और सौ बरस तक बेचारे हिन्दुस्तानी इन तकलीफों को झेलते आये। १९३० में महात्मा गांधी ने कांग्रेस की ओर से सारे देश में नमक का कानून तोड़कर बड़ी जोर से सत्याग्रह शुरू किया। इससे इतना लाभ हुआ कि जिन-जिन जगहों में प्राकृतिक दशा में नमक होता है वहां पर लोग उसे इस्तेमाल कर सकते हैं। इससे लाभ अवश्य हुआ लेकिन अधूरा। हमारे पंजाब के नमक के पहाड़ हजार बरस हिन्दुस्तान को और २५० बरस संसार भर को भरपूर नमक खिला सकते हैं। सिंध के रेगिस्तान में इतना काफी नमक है कि हिन्दुस्तान के लिये २०० बरसों तक काम दे सकता है। कितने दुख और शोक की बात है कि ऐसी अवस्था में गरीबों और जानवरों को नमक न मिले। यूरोपीय महायुद्ध के समय जब कि चेशायर या अदन से नमक न आ सकता था सरकार ने हिन्दुस्तान में अधिक नमक बनाने के लिये प्रोत्साहन दिया। लेकिन जैसे ही ११ नवंबर १९१८ को संधि घोषित की गई वैसे ही फिर इस अभागे देश में विलायती नमक आना शुरू हो गया।

केवल नमक ही जहाज का वजन (Keel balast) बनकर हिन्दुस्तान में नहीं आता परंतु पुराने अखबार, चीनी मिट्टी के टुकड़े, इटली का संगमरमर, फलों के मुरब्बे, आलू आदि वस्तुएं भी वजन बढ़ाने के काम में लाई जाती हैं। अब तो कनाडा से गेहूँ और जापान से चावल

इसी तरह हिन्दुस्तान में लाया जाता है। इस दशा में वजन बढ़ाने वाली वस्तुओं को जहाज का किराया केवल नाम मात्र के लिये ही लगता है इसलिये उसी तरह की देशी चीजों से वे चीजें सस्ती पड़ती हैं। विदेशी चीनी आप खरीदिये तो वह विदेश के अखबारों में बँधी मिलेगी। घर जाकर उसे खोल लीजिये और विदेशी अखबारों को भी पढ़िये उसके लिये आपको एक दमड़ी भी नहीं लगेगी। लेकिन नहीं! उस रद्दी का दाम चीनी में ही शुमार किया रहता है। चीनी मिट्टी के टुकड़ों से बंबई में और अन्य बड़े-बड़े शहरों में फर्श को रंग-बेरंगी बनाया जाता है। वजन बन के पत्थर की तरह आया हुआ इटली का संगमरमर, जिस पर रेलवे कंपनियां भी रियायती महसूल (preferential freight) रखती हैं जयपूर के देशी संगमरमर से बहुत सस्ता बिकता है।

नमक के इस वर्णन से हम देखते हैं कि विलायती नमक बेचने के लिये देशी नमक की पैदावार पर गहरा कर लगा कर उसका भाव ऊंचा किया गया जिसमें कि विदेशी जहाजी कंपनियों को उनकी सफर का खर्च नमक बेचकर हो सके। तो इससे यह सिद्ध होता है कि नमक पर का कर १ रु० ४ आ० से १ रु० कर दिया जाय, या सिर्फ एक पाई भी कम दिया जाय तो ब्रिटिश जहाजी कंपनियों को वजन की तौर पर नमक लाना असंभव हो जायगा। अर्थात यहां से खाने की चीजें ले जाने के लिये विलायत से जहाज आना बंद होगा जिसके परिणाम स्वरूप विलायत के लोगों को भूखों मरना पड़ेगा। इससे ब्रिटिश साम्राज्य या कम से कम विलायत के आर्थिक स्थिति को गहरी चोट पहुँचेगी। यही कारण है कि गवर्नर जनरल ने अपने खास अधिकार से १ रु० ४ आ० वाले पुराने ही दर को चालू रक्खा।

कपड़ा (Textiles)

अंग्रेजों की जेब भरने वाली यही सबसे मुख्य वस्तु है; और हिन्दुस्तान में ब्रिटिश साम्राज्य की इमारत खड़ी करने का श्रेय इस पुरातन भूमि खंड में उत्पन्न होने वाले रुई के रोएं को ही है। यहां के रुई के रोएं की काफी प्रसिद्धि है। १८०३ तक कपड़ा एक गज भी विलायत से यहां नहीं आता था। उलटा ईस्ट इंडिया कंपनी ही एक काफी बड़ा फायदा विलायत में यहां का कपड़ा बेंच कर उठाती थी। इस व्यापार में उन्हें अच्छा मुनाफा था। लेकिन १७८३ में इंजन का आविष्कार होने से और उसके कुछ ही साल बाद भाप के शक्ति की मदद से कपड़ा बुना जाने के कारण विलायत में इतने अधिक प्रमाण में कपड़े की निकास होने लगी कि इसे दूसरे देशों में भेजना आवश्यक हो गया। पहिले पहल १८२६ में ३ लाख का कपड़ा हिन्दुस्तान में आया। १९२९ में ७२ करोड़ (६६ करोड़ का कपड़ा और ६ करोड़ का सूत) हिन्दुस्तान में आया। अब यह एक समाधान की बात है कि १९३६ में लंकाशायर से सिर्फ ९$\frac{3}{8}$ करोड़ का ही माल आया—इसके लिये लंकाशायर ३$\frac{3}{8}$ करोड़ की रुई लेने के लिये बाधित था। अब १८०३ से १९३६ तक का कपड़े के व्यापार का इतिहास देखें।

१८५१ में पहिले पहल बंबई में श्री० डावर की कपड़े बुनने और सूत कातने की मिल बनना शुरू हुई। इस घटना ने सरकार को यहां के रुई पैदा करने वाले भाग को अपने काबू में करने के लिये प्रेरित किया। इस प्रकार बरार को अंग्रेज लालायित दृष्टि से देखने लगे; और

किस दयनीय दशा में निजाम के हाथ से इन्होंने वरार को झटक लिया वह इस प्रकार है:—१८०५ में लार्ड वेलेजली ने चलाये हुए सहायक सेना की शर्तों के अनुसार देशी रियासतों को कंपनी सरकार की एक फौज अपने यहां रखनी होती थी, जिसे कि लड़ाई के समय उनके सुपुर्द करनी पड़ती थी। लेकिन उसके भत्ता और वेतन की देशी रियासतों' पर कोई जिम्मेदारी न थी और अंग्रेजों पर तो विलकुल ही न थी चाहे देशी रियासतें दें या न दें। इतना होने पर भी जान मालकम लुडले के नीचे दिये हुए वृत्तान्त को, जो कि १८५९ में प्रसिद्ध हुई उनकी 'Thought on the policy of the crown towards India' से लिया गया है, मालूम होता है कि किस प्रकार अंग्रेज अधिकारियों ने किसी न किसी वहाने देशी रजवाड़ों को अपने राज्य के कुछ भाग इन्हें देने के लिये वाध्य किया। निजाम के राजा पर लादी हुई सहायक सेना के टुकड़ी का भत्ता और वेतन चुकाया न गया, इस लिये निजाम को एक निश्चित समय तक उसे चुकादेने के लिये कहा गया। लुडले कहते हैं:—

निजाम साल डेढ़ साल में उसे न चुका सका। इस पर वहां के रेसिडेन्ट को सूचित किया गया कि वह इस कर्जे को पूरा करने के लिये उनसे राज्य का हिस्सा कुछ समय तक के लिये अपने सुपुर्द करने के लिये कहे। लार्ड डलहौजी ने अपने कार्यवाही में १ जनवरी १८५१ को लिखा है कि "सहायक सेना के खर्चे के वरावर अदायगी के लिये हमको शायद हमेशा के लिये ही राज्य का हिस्सा अपने हाथ में रखना पड़ेगा।" और इसके अनुसार वहां के रेसिडेन्ट को भी इस; भीतरी मंशा की सूचना दे दी गई कि वह इस वात को ध्यान में रक्खें

और इस संबंध में उसकी राय भी मांगी गई। यह ४ जनवरी १८५१ की बात थी। ६ महीने इसी विचार में और बीत गये, कि कौन सा प्रदेश मांगा जाय और इस निस्बत की मांग किस ढङ्ग से पेश की जाय। ६ जून १८५१ को गवर्नर जनरल ने निजाम को एक चिट्ठी लिखी। उसमें उन्होंने उनकी संधि के अनुसार सहायक सेना की कार्य कुशल व्यवस्था रखने की जिम्मेदारी निजाम सरकार पर लादी। निजाम को यह बतलाया गया कि यद्यपि यह मांग अस्थाई है परंतु यह स्थगित नहीं की जा सकती और "यह आवश्यक होगा" कि "वह (निजाम) कायदे के अनुसार इसमें लिखे हुए जिलों के प्रबंध और नियंत्रण का पूरा अधिकार रेसिडेन्ट को सौंप दें।" निजाम इस मांग को सुनकर आश्चर्यचकित हो गया। उसने इतना अवश्य कहा कि "कंपनी महाशय की तो यह रीति है नहीं कि वह अपने साहूकारों का कर्ज चुकाने के लिये अपने राज्य का हिस्सा दे देती हो।"

"लेकिन जब निजाम ने ३ महीने ही में रकम चुकाने और आगे भी चुकाने की जमानत देने के लिये कहा तब तो वहां का रेसिडेन्ट और सरकार दोनो और भी चकित हुए। इस पर जमीन के मांग की बात चीत स्थगित करदी गई; आधे से थोड़ा ज्यादा (३४०,००० पौंड) अदा किया गया; बाकी ३२०,००० पौंड अक्टूबर ३१,१८५१ को अदा करने को था। लेकिन दूसरी किस्त में, ५ दिसंबर को ८७,००० पौंड ही दिये गये। एक महीने का और समय दिया गया। यह द्रव्य और सहायक सेना का होने वाला भुगतान यह सब मिलाकर लगभग ४६०,००० पौंड तक हो गये। ३० मार्च १८५३ के कार्यवाही में लार्ड डलहौजी ने साफ तौर से माना है कि किसी भी संधि के अनु-

सार निजाम पर सहायक सेना का बोझा सहन करने का भार नहीं पड़ता था; इसी के साथ उसमें उसने यह भी मान्य किया है कि निजाम के यहां की सहायक सेना का कुल खर्च व्यर्थ ही इतना अधिक रक्खा गया है जब कि उससे कम खर्च पाने वाली सेनाओं से वह किसी भी तरह से अच्छी नहीं हैं। इस पर भी वह यही राय जाहिर करता है कि राज्य का टुकड़ा मांगा जाना चाहिये, जिससे कि पुराना कर्जा और सेना का चालू खर्च पूरा किया जा सके। राज्य का टुकड़ा अवश्य मांगा जाय चाहे सेना वहां से हटाने का ही तैय क्यों न हो, जिसमें कि बचे हुए सेना के भाग का खर्चा चल सके, क्योंकि सेना धीरे-धीरे ही हटाई जाय। इसके अनुसार वहां का रेसिडेन्ट सूचित किया गया कि "वह राज्य के टुकड़े की मांग पर अड़ा रहे और उसके प्रति भरसक प्रयत्न करे।" एक नये संधि का मज़मून उसके पास भेजा गया जिस पर कि निजाम को दस्तखत करना था।

"निजाम नये संधि के बिलकुल विरुद्ध था। उसने रेसिडेन्ट से कहा कि तुम लोग या और कोई भी कितना भी समझो कि यह संधि मेरे लिये हितकर है परंतु मैं इसे बिलकुल पसन्द नहीं करता। उसके उपरान्त निजाम नये संधि को पुराने संधि के साथ तुलना करने के लिये राजी होता है। दूसरे दिन निजाम ने पूछा कि क्या कभी मैंने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध किसी से मिलकर उनको धोका दिया है? या उनको मदद करने के अतिरिक्त कोई काम किया है, या उनकी आज्ञा भंग की है कि मेरे साथ इस तरह का बर्ताव किया जा रहा है? राजा के लिये दो बातें बहुत ही बुरी समझी जाती हैं, एक व्यर्थ ही अपने राज्य का एक हिस्सा किसी को देना, और दूसरा नमकहलाल फौज

को इस्तीफा दे देना।" निजाम ने वादा किया कि सहायक सेना का वेतन भविष्य में कंपनी की फौज की तरह ठीक महीने की पहिली तारीख को दिया जाया करेगा। और बाकी के भुगतान के लिये भी निजाम ने अपना वचन दिया। इतनी बात चीत के बाद निजाम ने सब को बाहर जाने की आज्ञा दी और रेसिडेन्ट से प्रार्थना की कि "कम से कम मेरे ही ऊपर उपकार करने की दृष्टि से आप लार्ड डलहौजी को मेरी ओर से कहें कि वे इस नये संधि को मेरे ऊपर न लादें। और कर्ज वगैरे के लिये मेरे ऊपर विश्वास रक्खें; इनका भुगतान ठीक समय पर हुआ करेगा।" इसके बाद निजाम ने एकदम उमड़ कर कहा "आप लोग, जो कभी यूरोप में रहते हैं और कभी हिन्दुस्तान में, कभी फौज में तो कभी व्यापार में, हमारी भावना को नहीं समझ सकते। मैं एक राज्याभिषिक्त महाराज हूँ; जहां कि मेरे पूर्वजों ने राज्य किया है वहीं मुझे जीना और मरना है। क्या आप समझते हैं कि अपने राज्य का एक हिस्सा आपको हमेशा के लिये देकर मुझे सुख होगा? यह बिलकुल असंभव है कि मैं फिर सुखी रह सकूंगा। मैं अपने को अपमानित ही समझता रहूंगा।" इस प्रकार निजाम ने रेसिडेन्ट की बहुत प्रार्थना की और समझाने का प्रयत्न किया परंतु इसका उस पर कोई प्रभाव न पड़ा और अंत में बरार अंग्रेजों को पट्टे (Lease) पर देना पड़ा। १९०३ में यह पट्टा हट गया और अब अंग्रेजों की वह पूरी जड़-खरीद ही हो गई है। इस सुअवसर पर निजाम को बरार के बदले में G.C.B. की बड़ी उपाधि प्रदान की गई।

इसके बाद नागपूर या मध्य देश का नंबर आया। १८५३ में लार्ड डलहौजी ने कोर्ट आफ डिरेक्टर्स को लिखा कि, "बरार से नागपूर को

अच्छा रास्ता है", और १८५४ ही में मौका भी हाथ आया। उसी साल फरवरी में भोसले बिना वारिस के ही मर गये। उनके किसी भी पत्नी को गोद लेने की आज्ञा न दी गई, राजमहल फौज से घेर लिया गया, रानियों को महल के बाहर निकाल दिया गया और उनके जवाहिरात बेच डाले गये। हाथी, घोड़े, गाय, बैल आदि सब को नीलाम करके किले पर अपना कब्जा कर लिया। वास्तव में नागपूर (प्रांत) हिन्दुस्तान में रुई के लिये सबसे अच्छा भाग है और बरार ही से उसमें रास्ता मिला। इस प्रकार बरार और मध्य देश अंग्रेजों के अधिकार में आये, और लार्ड डलहौजी के कहने के अनुसार 'यह एक व्यापारी लेन देन थी।'

—:o:—

एक्साइज़ (Escise)

कपड़े पर आयात और निर्यात कर

हिन्दुस्तान के सूती कपड़े के व्यापार का इतिहास राजनीति और आर्थिक शास्त्र दोनों से संबंध रखता है। जब लंकाशायर का व्यापार बढ़ने लगा, हिन्दुस्तान उसके माल के लिये बाजार समझा जाने लगा; और भारतीय सरकार भी लंकाशायर के हित रक्षण को प्रथम स्थान देने लगी। इसके पुष्टि के लिये हम कपड़े पर आयात कर और एक्साइज़ कर का इतिहास देखें।

बाहर से आयात किये हुए कपड़े पर कर लगाने का उद्देश सबसे पहिले सरकारी आय बढ़ाना था। १८५९ में सूती रस्सी और सूत पर ५% आय कर बैठाया गया, लेकिन लंकाशायर ने उसका विरोध किया। इस पर भारत मंत्री ने कर घटाने के लिये कहा। १८६१ में जब यह कर घटाया गया तब उस समय के फाइनेन्स मेंबर ने इस कार्य की पुष्टि में कहा कि "ब्रिटिश कारखानेदार और विलायती व्यापार पर इसका बुरा असर पड़ता है; और हिन्दुस्तान की आर्थिक नीति विलायत पर निर्भर है—क्यों कि हिन्दुस्तान में लगाया हुआ कर अगर विलायती हित को नुकसान पहुँचाता है तो अंग्रेज उसे सहन नहीं कर सकते। और एक कारण यह भी है कि आपस की लड़ाई (Civil War) के कारण लंकाशायर के व्यापार की ऐसी बुरी दशा हो गई है कि उनको इस कर को कम करने से मिलने वाले लाभ को एक दिन के लिये भी स्थगित नहीं किया जा सकता। आखिरकार १८८२ में यह

एक दम हटा दिया गया। १८९४ में फिर सूती चीजों पर ५% मूल्यानुसार (Ad Valorem) कर लगाया गया। लेकिन भारत मंत्री ने फिर हस्तक्षेप किया और भारतीय सरकार के विरोध करने पर भी इस कर को हटा दिया। बाद में फिर यह कर लादा गया लेकिन इससे होने वाला नुकसान, ५% का एक्साइज कर लगा कर पूरा किया गया। लेकिन यह कर कारखानों में बने हुए २० या उससे अधिक नंबर के सूत पर था। १८९६ में हिन्दुस्तान की दशा और भी बिगड़ी, जब कि आयात कर कम करके ३½% किया गया और उसी के साथ हिन्दुस्तान की मिलों में बुने हुए सूती कपड़ों पर ३½% का एक्साइज कर लगाया गया।

अब इसके बाद हम यूरोपीय महायुद्ध के काल में (१९१४ से १९१८ तक) आते हैं। इस काल में मिल-मालिक, नरमदल वाले (Moderates) और व्यापारियों ने गवरमेन्ट को अनेक प्रकार से मदद की। इसके साथ ही सरकार को फौज भरती में और द्रव्य से भी हिन्दुस्तान ने सहायता की। हिन्दुस्तान ने ३४९ करोड़ की लड़ाई के खर्च के लिये मदद की और हजारों सिपाही लड़ाई में कटवाये। लड़ाई के जमाने में बाहर से कपड़ा आना बहुत कम हो गया और हिन्दुस्तानी मिलों ने अपना व्यापार बढ़ाकर काफी मुनाफा उठाया, गोकि सूती माल पर लगे हुए कर लगभग वैसे ही थे। परंतु युद्ध समाप्त होने के बाद शीघ्र ही देशी रोजगार को धक्का लगा। इस पर उन्होंने बहुत हलचल मचाई और आखिरकार कुछ सुविधाएं सरकार ने इन्हें दीं। १९१७ में सूती माल पर ३½% से ७½% आयात कर कर दिया गया और देशी कपड़ों पर एक्साइज कर ३½% ही

रक्खा। बाद के बरसों की घटनाओं का थोड़े में इस प्रकार वर्णन है:—

आयात-निर्यात कर		कपड़ा	चीनी	विलासिता की वस्तुएं	सिगरेट वगैरह
	%	%	%	%	%
१९२०–२१	७½	७½	१०	१०	५०
१९२१–२२	११	११	१५	२०	७५
१९२२–२३	१५	,,	२५	३०	,,

ऊपर दिये हुए अंकों से तीन बरसों में करों में कितनी बाढ़ हुई यह दिखाया गया है। १९२२-२३ के साल आम चीजों पर १५ % कर लगाया गया। उस समय सूती चीजों पर भी १५ % कर बैठाने का प्रस्ताव पेश किया गया। इसके जवाब में सरकार की ओर से एक्साइज कर ३½ से ७½ % बढ़ाने का प्रस्ताव लाया गया। परंतु असेंबली में पहिला प्रस्ताव गिर गया इसलिये दूसरा प्रस्ताव भी छोड़ दिया गया। हिन्दुस्तानी मिलों के व्यापार के बुरे दिन १९२३ से शुरू हो गये क्यों कि उन पर लड़ाई के बाद के मंदी का असर पड़ने लगा था। इसलिये वे एक्साइज कर एक दम हटाने के लिये हलचल मचाने लगे जिसके फल-स्वरूप ३½ % का एक्साइज कर हटा दिया गया। १९२१–२२ में हिन्दुस्तानी मिल मालिकों को विदेशी कपड़ों की तुलना में ७½ % की अधिक सुविधा थी (११—३½ = ७½) परंतु एक्साइज कर हट जाने से पूरे (३½ + ७½ या ११) की अधिक सुविधा मिल गई। इस प्रकार जब कि मिल मालिक खुशियां मना रहे थे, सर बैसिल ब्लैकेट अर्थ मंत्री ने एक दिये हुए सुविधा को दूसरे हाथ से विदेशी-विनिमय १ शि० ४ पें० से १ शि० ६ पें० करके छीन लिया (यानी २ पेंस

वढ़ाया जो कि बराबर है आठवां हिस्से के या १२½% के)। इसके मानी यह हुए कि विदेशी कपड़े वालों को १२½% की सुविधा मिल गई, जब कि देशी मिल मालिकों को ११% ही की सुविधा मिल रही थी। अर्थात देशी कपड़े की तुलना में विदेशी कपड़े को १½% अधिक सुविधा मिल गई। यह भारतीय सरकार के बाजीगरी हिकमतों का एक अच्छा नमूना है। परंतु मिल मालिकों का मौखिक विरोध चालू ही रहा। १९३० में कपड़ों पर आयात कर ११ से २० फी सदी तक बढ़ाये गये। लेकिन विलायती कपड़ों पर सिवाय मामूली भूरे कपड़ों के और सब पर १५% कर ही रक्खा गया। यह सुविधा साम्राज्यान्तर्गत-रियायत (Imperial preference) के नाम पर ली गई। परंतु इसका उद्देश्य था जापान का सामना करने का जो कि हिन्दुस्तान में अपना माल बहुत सस्ता बेंच कर विलायती माल की बिक्री तोड़ रहा था। यह चाल तो बड़ी चतुराई की थी, लेकिन पूर्वी भाग में जापान विलायत से कुछ कम थोड़े ही पड़ता है। दोनों टापू वाले हैं, दोनों ही पूर्व भाग में अपना माल बेंचने की फिकर में लगे रहते हैं। दोनों ही अपना-अपना साम्राज्य बढ़ाने के तरफ लगे हुए हैं और एक दूसरे से दबने वाले नहीं हैं। अंग्रेजों की इस चाल को देखकर जापान ने अपने जहाज मालिकों के सामने इसकी दो सूरतें रक्खी, कि या तो वे हिन्दुस्तान जाने वाले कपड़े से मिलने वाले किराये से हाथ धो बैठें क्योंकि भारतीय सरकार ने उनके कपड़ों पर विलायती कपड़ों से ५% अधिक कर लगाया है, या वे ५% कम किराये पर जापानी कपड़ा ले जाने के लिये तैयार हो जिसमें कि जापानी मिल मालिक हिन्दुस्तान में विलायती कपड़ों से उसी तरह सामना कर सकें। जापानी जहाज के

मालिक इस दूसरी बात पर राजी हो गये और जापानी कपड़ा फिर बराबरी से विलायती कपड़े से सामना करने लगा। इतना ही नहीं बल्कि जापान स्वतंत्र राष्ट्र है इसलिये वह, इस प्रकार स्वार्थ त्याग करने वाले जापानी जहाजों के मालिकों को सरकारी आय से उनके नुकसान को पूरा करने लगा। हिन्दुस्तान विलायत के अधीन है परंतु जापान स्वतंत्र है इसलिये वह अंग्रेजों की चाल का उन्हीं के अधीन देश में ही उनका सामना कर सका। थोड़े से जहाज के मालिकों को होने वाले नुकसान को सारे राष्ट्र ने आपस में बांट लिया। इसको कहते हैं राष्ट्रीयत्व। इस प्रकार अपने ही अखाड़े में हार खाने पर, सरकारी आय बढ़ाने के लिये सब वस्तुओं पर (रुइहर सामान भी) ५% ज्यादा कर (surcharge) लगाया, इससे इनका माल भी मंहगा हो गया। परंतु इसके विरुद्ध अहमदाबाद के मिल मालिकों ने शोर मचाना शुरू किया। अहमदाबाद में अच्छा महीन कपड़ा बुना जाता है और इसके लिये वे इजिप्त और अमेरिका से रुई मंगाते हैं। अब बाहर से मंगाई हुई रुई के प्रत्येक पौंड (करीब आधा सेर) के लिये २ पैसा ज्यादा-कर देना पड़ा। इसलिये वे लंकाशायर से ठीक तरह सामना न कर सके। इस प्रकार जो कुछ ज्यादा-कर के कारण विलायत को नुकसान हुआ वह उसने ज्यादा कर लगा कर पूरा कर लिया।

इसके आगे का इतिहास भी उतना ही रोचक है। १९३१-३२ के साल आयात कर बढ़ाने के लिये विलायती रुइहर सामानों पर २५% और अन्य देशों के रूइहर सामानों पर ३७½% ज्यादा कर लगाया (आयात कर पर २५% और ३१¼% ज्यादा कर)। लेकिन जापान हारने वाला थोड़े ही था? उसने अपने येन का मूल्य घटा दिया

जैसे कि कुछ बरस पहिले विलायत ने किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि जापानी कपड़ा हिन्दुस्तान में उतना ही सस्ता बिकने लगा। अब उन्होंने टैरिफ बोर्ड के जरिये काम करना शुरू किया। और इसके अनुसार विलायत के अतिरिक्त देशों से आने वाले भूरे रंग के रुइहर सामानों पर १९३२ में ५०% और १९३३ में ७५% कर लगा दिया। इस पर जापान ने हिन्दुस्तानी रुई का बायकाट करना शुरू किया। जब उसने इस शस्त्र को उठाया तब व्यापारी संधि करने की बात चीत आरंभ हुई और उसके लिये जापान का व्यापारी-प्रतिनिधि मंडल हिन्दुस्तान में आया। वास्तव में ये घटनायें जापान और विलायत के होड़ के कारण हुई और वह होड़ हुई हिन्दुस्तान में, इसलिये तीन व्यापारी-करार होने की आवश्यकता थी—विलायत और जापान और हिन्दुस्तान में, लेकिन हमें तो हिन्दुस्तान और विलायत, और हिन्दुस्तान और जापान इन दो ही करारों से मतलब है और इस पुस्तक के लिये तो हिन्दुस्तान और विलायत में हुये करार ही से ज्यादा मतलब है। सर विलियम क्लेअर लीस के नेत्रित्व में एक विलायती प्रतिनिधि मंडल हिन्दुस्तान में आया। हिन्दुस्तान की बाजू कहने के लिये सिर्फ बंबई के मिल मालिकों की संस्था (Bombay Mill-owner's Association) को बुलाया गया यद्यपि हिन्दुस्तान के अन्य भागों के मिल मालिकों का उसमें उतना ही हित था। इतना होने पर भी उनको किसी तरह का मताधिकार न था; बंबई के मिल मालिकों की संस्था का नेत्रित्व सर एच० मूडी को दिया गया था इसलिये हिन्दुस्तान और विलायत में हुए इस करार को मूडी-लीज करार (Mody Lees Pact) कहते हैं। इस करार के अनुसार हमें क्या मिला ? साम्राज्यांतर्गत रियायत की नीति

फिर मान्य की गई। इसके अनुसार यह निश्चित हुआ कि हिन्दुस्तान में अन्य देशों के माल की अपेक्षा विलायती माल को अधिक रियायत मिलना चाहिये। अगर आगे कभी २५% का ज्याद-कर (surcharge) जो कि १९३१ के अक्टूबर में सब विदेशी चीजों पर लगाया गया था हटाया जाय तो उस अवस्था में विलायती माल पर कर न लगाया जाय। विलायत से यहां आयात होने वाले सूत पर कर कम कर दिया गया। विलायती नकली रेशमी कपड़ों पर कर भी ५० से ३० फी सदी कर दिया गया। इसके उपलक्ष में हिन्दुस्तान को क्या मिला? एक तो यह कि अन्य देशों में जो सुविधायें विलायती माल को मिलती है वे हिन्दुस्तानी वस्तुओं को प्राप्त कर देने की व्यवस्था करने का वादा। इसके साथ यह भी वादा किया कि विलायत पहिले से अब अधिक मात्रा में हिन्दुस्तानी रुई को उपयोग में लावेगा।

अब हम थोड़े में हिन्दुस्तान और जापान में हुए व्यापारी करार को देखें, जिसका कि सार इस प्रकार है:—इसके अनुसार हिन्दुस्तान में आयात होने वाले जापानी सामान पर अधिकतर ५० फी सदी या सवा पांच आने फी पौंड के हिसाब से कर लगाया जा सकता था। और (quota system) के अनुसार जापान ने खरीदे हुए १० लाख गांठ रुई के बदले में ३५ करोड़ गज जापानी कपड़ा खरीदना था। यह हिसाब एक साल के लिये था।

सन् १९३० में Cotton Protection Act (रुइहर चीजों के संरक्षण का कानून) पास हुआ जो कि केवल तीन साल के लिये था। इसके अनुसार हिन्दुस्तान के सूती व्यापार को कुछ सुविधाएं प्राप्त हुईं थीं। १९३३ में यह कानून समाप्त होता था इसलिये १९३२ में इसके

संबंध में जांच करना टैरिफ बोर्ड के सुपुर्द किया गया। टैरिफ बोर्ड ने देशी कपड़े के उद्यम को अधिक संरक्षण देने का मत प्रदर्शित किया, परंतु इनका रिपोर्ट ठीक समय पर प्रकाशित न किया गया। १९३२ में रिपोर्ट तैयार किया गया और प्रकाशित किया गया १९३४ में। इस बीच के काल में मूडी-लीज करार, हिन्दुस्तान और जापान का करार, और ओटावा का व्यापारी करार, इन तीनों करारों पर जब हस्ताक्षर हो गये तब टैरिफ बोर्ड का रिपोर्ट प्रकाशित किया। अर्थात् जब चोर सब बटोर ले गया तब जाकर संत्री बैठाया गया। अतएव हिन्दुस्तान—जापान, और हिन्दुस्तान—विलायत इन करारों को सम्मति दी गई। ओटावा करार और उसके परिणाम का अगले अध्याय में वर्णन हैं।

——:०:——

ओटावा करार (Ottawa Pact)

ओटावा करार हिन्दुस्तान के व्यापार में एक बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। २१ जुलाई १९३२ को केनाडा के एक बड़े शहर ओटावा में ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत देशों के प्रतिनिधि एकत्रित हुए। हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि होकर गये हुये श्रीयुत अतूल चटर्जी, रेनी और चेट्टी सरकारी नामजद थे। इनको न तो जनता ही ने चुना था और न इस बारे में व्यवसाय समितियों (Chambers of Commerce) ही से कोई सलाह ली थी। उसके बाद अगस्त के महीने में एक दिन यह मालूम हुआ कि साम्राज्यान्तर्गत देशों से आने वाली बहुत सी चीजों के लिये हिन्दुस्तान ने रियायत देना स्वीकार कर लिया है। इतना ही नहीं परंतु और भी कुछ कारवाइयां जल्दी से की गईं जिनका असर आगे के लिये पड़ने वाला था। इस करार पर २८ अगस्त १९३२ को हस्ताक्षर हुए और भारतीय सरकार ने उसे स्वीकार कर लिया। परंतु इस करार को असेंब्ली के सामने तब रक्खा जब कि प्रतिनिधि मंडल (Delegation) का रिपोर्ट प्रकाशित किया गया (नवंबर में)। इसका केवल यही उद्देश्य था कि असेंब्ली को अपनी सम्मति देना ही पड़े। परंतु जनता के प्रतिनिधि इस प्रकार मानने वाले न थे। एक कमेटी नियुक्त की गई। जिसकी बैठक कुछ घंटों ही में ही समाप्त हो गई और उसने एक समझौता आगे रक्खा, गोकि असेंब्ली इसके भी तीव्र विरोध ही में थी। अंत में असेंब्ली को झुकना ही पड़ा, लेकिन इस करार का जीवन कम करके तीन साल

रख दिया और यह शर्त रक्खी कि इस करार के परिणाम का वार्षिक रिपोर्ट प्रसिद्ध किया जाय।

इस करार में यह ठहरा कि निश्चित वस्तुओं पर लगाये हुए करों में विलायत ने हिन्दुस्तान को और हिन्दुस्तान ने विलायत को रियायत देना चाहिये। विलायती माल पर हिन्दुस्तान में औरों से १० फी सदी कम कर लगना चाहिये, हिन्दुस्तान में अभी तक विलायती फौलाद और कपड़े पर रियायत थी, और विलायत में हिन्दुस्तानी चाय की रियायत थी। परंतु इस करार के अनुसार विलायत ने हिन्दुस्तानी जूट, चावल, लाख आदि इस प्रकार की वस्तुओं पर रियायत देना स्वीकार किया। इन वस्तुओं में जूट में तो हिन्दुस्तान का एकाधिकार (monopoly) है ही, इसलिये संसार में इस वस्तु में उससे होड़ करने वाला कोई नहीं है। ऐसी अवस्था में विलायत ने दिये हुए कागजी रियायत से हिन्दुस्तान को क्या लाभ था? वास्तव में इस प्रकार के करारों में परस्परिकता होनी चाहिये अर्थात् दूसरे से जितना हम ले रहे हैं उतना ही उसे भी देना चाहिये। परंतु हिन्दुस्तान के प्रति इस तत्व का अनुसरण कभी भी न किया गया। वास्तव में यहां से बाहर भेजे जाने वाले माल का केवल तिहाई हिस्सा ही विलायत को जाता है, और शेष $\frac{2}{3}$ और देशों को। इसलिये यह आवश्यक है कि हम उन देशों से, जहां कि हमारा दो-तृतियांश भाग निर्यात होता है, मेल-जोल बढ़ावें। इसके अतिरिक्त यदि हम केवल विलायत को जबरदस्ती सुविधायें दे, तो उन देशों में और हममें वैमनस्य उत्पन्न हो जायगा। ऊपर तो हमने यह देखा ही है कि विलायत ने रियायत (preference) देकर हमें कोई सुविधा नहीं दी। क्योंकि ओटावा करार के

अनुसार चाय और जूट के लिये हिन्दुस्तान को रियायत मिली, परंतु जूट में वास्तविक कुछ मिली कि नहीं यह तो ऊपर ही दिखाया गया है। और चाय के बारे में जो रियायत हिन्दुस्तान को मिली है वही लंका को भी मिली है गोकि ओटावा करार से वह बिलकुल अलग रहा।

वास्तव में बात यह है कि हिन्दुस्तान की चाय पर कोई कर बैठाया जाता है तो विलायत में चाय का भाव बढ़ जाता है और हिन्दुस्तान के चाय के बगीचों के अंग्रेज मालिकों को लाभ कम होता है। दूसरी बात यह है कि विलायत कल-कारखानों वाला देश है। ऐसे देश की तुलना में जहां के उद्योग-धंदे बहुत बढ़े-चढ़े हैं, हिन्दुस्तान से विलायत के लिये सुविधाओं का संकल्प कराना अन्याय ही नहीं है बल्कि देशी उद्योग-धंदों का जो कि अभी भी छोटी अवस्था में है उनका गला घोटना है। असेंबली ने नियुक्त की हुई कमेटी को उक्त दृष्टि कोण से ओटावा करार की जांच करना आवश्यक था। परंतु उसने करार का जीवन तीन बरस कर देने ही में समाधान मान लिया। वास्तव में इस करार को हिन्दुस्तान के लिये फायदेमन्द साबित करने की जिम्मेदारी सरकार के ही ऊपर थी।

ओटावा करार हिन्दुस्तान के गले तो जबरदस्ती उतारा गया। परंतु केनाडा जैसे स्वयं-शासित आधिपत्य (Self-governing dominion) को भी अंग्रेज खींच ही लाये। इस करार में शामिल होने से केनाडा हिचकिचा रहा था यह संसार भर में प्रसिद्ध हो गया था। क्योंकि इस करार के अनुसार बहुत सी विलायती चीजें केनाडा में खपने लगतीं, जिससे अमेरिका के संयुक्त-देश का लाखों डालरों का नुकसान होता। इस नुकसान के डर ने अमेरिका के साहूकारों में

खलबली मचा दी। केनाडा की राजनैतिक पार्टियों को द्रव्य की सहायता अमेरिका ही से होती है, इस लिये उनकी केनाडा के नेताओं पर काफी धाक रहती है। इस अवसर पर भी उन्हों ने अपनी धाक जमाने की कोशिश की लेकिन अमेरिका के आयात-निर्यात करों के कारण केनाडा के लोग अंग्रेजों की ही ओर झुके। इस प्रकार, अंत में, विलायत (एक तरफ) और न्यू फाउन्ड लैन्ड, दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैन्ड, हिन्दुस्तान और दक्षिण रोडेशिया, इन देशों में सात करार हुए। इन करारों के अनुसार विलायत को भी कुछ आधिपत्य राज्यों (Dominions) को रियायतें देनी पड़ी। और देशों की तुलना में आस्ट्रेलिया और केनाडा को गेहूँ के लिये (६ पें फी बुशल) रियायत दी। यूरोप के देशों की तुलना में आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका को वहां की शराब और फलों के लिये; डेअरी की चीजें (dairy products), अंडे, मुर्गी आदि चीजों के लिये केनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजी लैन्ड को रिआयत दी। इस प्रकार से आधिपत्य-राज्यों को रियायतें दी गई।

केनाडा और आस्ट्रेलिया का हित गेहूं में था; आस्ट्रेलिया, केनाडा, न्यूजी लैन्ड, दक्षिण रोडेशिया और दक्षिण अफ्रीका का मांस और मांस से बनने वाली वस्तुओं में हित था; न्यूजी लैन्ड, केनाडा और आस्ट्रेलिया का हित था डेअरी की चीजें और मुर्गी आदि वस्तुओं में। इस प्रकार प्रत्येक देश को विलायत के सिर वे-वे चीजें लादनी थीं। इसमें हिन्दुस्तान का भी एक छोटा सा भाग था; वह कालीन, धुस्सा, लोई, चमड़ा, जूट के सामान और चंदन का तेल अधिक मात्रा में विलायत को बेचना चाहता था। थोड़े दिनों के लिये कुछ लाभ

इस करार से संभवतः हुआ हो परंतु यह सच है कि इस समस्त-साम्राज्यांतर्गत-प्रबंध से हिन्दुस्तान को कोई कहने लायक लाभ न हो सका। इस संबंध में मि० कोल का कथन विचारणीय है। वे कहते हैं कि "एक मामूली साल में हिन्दुस्तान से निर्यात होने वाली वस्तुओं का केवल चौथाई भाग ही विलायत खरीदता है। और हिन्दुस्तान में आयात की जाने वाली चीजें अधिकतर विलायती ही रहती हैं; और जिन चीजों को वह विलायत भेजता ही है उनके लिये हिन्दुस्तान को उसकी चीजें खरीदने का आश्वासन देना व्यर्थ है।" मि० कोल आगे कहते हैं कि "हिन्दुस्तानी चीजों के लिये वास्तविक बाजार है पौर्वात्य देश और केवल विलायत के स्वार्थ के लिये हिन्दुस्तान से व्यापारी करार करना जिसमें कि उसका जापान, चीन और अन्य एशिया के देशों के साथ का व्यापार कम हो, हिन्दुस्तान के हित के विरुद्ध है। ६ महीने पहिले सूचना देकर करार समाप्त किया जा सकता है लेकिन इसमें तथ्य बिलकुल नहीं है। क्योंकि यह धारा सभाओं द्वारा ही किया जा सकता है। और इसलिये असेंब्ली ने करार समाप्त करने का प्रस्ताव पास करने पर काउन्सिल आफ स्टेट, जिसमें सरकारी और नामजद लोगों ही का बहुमत रहता है, उसे नापास कर देगा; और यदि इन दोनों सभाओं में एक ही राय दिखाई गई तो गवर्नर जनरल अपने खास-अधिकार (Veto) से उसे रद्द कर सकता है। इसके साथ इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिये कि बाजारों में गड़बड़ी करने से उसका सरकारी बजट पर असर पड़ता है। जब बजेट में कठिनाई पड़ेगी तो क्या सरकार कर बढ़ायेगी? यदि ऐसा करेगी तो उपभोक्ताओं को तकलीफ उठानी पड़ेगी; और यदि पुराने करों में कमी

करेगी तो वजेट गड़वड़ हो जायगा।"

ओटावा के व्यापारी करार पर भारतीय सरकार ने नियुक्त किये हुए प्रतिनिधिओं ने २८-८-३२ को हस्ताक्षर किये थे। इस प्रकार वंध जाने के बाद असेंव्ली में उसकी स्वकिृति प्राप्त करने के लिये भेजा गया। असेंव्ली ने तो करार पर विरोध प्रकट ही किया था परंतु जनता ने तो बहुत ही अच्छे तरीके से अपनी राय जाहिर की। मद्रास प्रांत के व्यापारी निर्वाचन क्षेत्र (constituency) से श्रीयुत चेट्टी (जो कि ओटावा करार पर हस्ताक्षर करने वालों में से एक थे) खड़े हुए थे। श्रीयुत चेट्टी हार गये। इनकी हार ने साफ साफ जाहिर कर दिया कि न तो जनता ओटावा करार चाहती है और न वह सरकार के हाथों की कठपुतलियों को चाहती है। इसके थोड़े ही दिनों वाद ओटावा करार समाप्त करने के लिये ६ महीने पहिले सूचना देकर उसे समाप्त कर दिया गया. और उसके वाद कोई भी करार उपस्थित न किया गया। किस प्रकार यह करार हमारे लिये हानिकारक है इसे विस्तार में जानने के लिये पाठकों को, असेंव्ली ने इस संबंध में नियुक्त की हुई कमेटी का, रिपोर्ट पड़ना चाहिये। पहिली बात तो यह है कि यह कहीं भी सिद्ध न किया गया कि यह करार हिन्दुस्तान को लाभदायक है। इससे मिलने वाले लाभ का पोलापन भी इस परिच्छेद में साफ साफ दिखाया गया है।

करार के क्षेत्र से बाहर की बहुत सी चीजें जो कि विलायत में खपती हैं, लेकिन उनकी हिन्दुस्तान में थोड़े प्रमाण में ही उपज होती है उनके लिये हिन्दुस्तान को उपनिवेशों (Colonies) के साथ होड़ करना पड़ती थी, इसलिये उन चीजों के संबंध में हिन्दुस्तान को कोई फायदा

न मिला। फिर बहुत सी ऐसी तैयार वस्तुएं हैं जिनको विलायत थोड़े ही प्रमाण में निर्यात करता है परन्तु हिन्दुस्तान में उन वस्तुओं की खपत बहुत अधिक प्रमाण में होती है। ये चीजें अन्य देशों से हिन्दुस्तान में आती हैं। इस संबंध में साम्राज्यांतर्गत रियायत से भावों को बढ़ाने के सिवाय हिन्दुस्तान को और कोई लाभ नहीं होने का। फिर यह भी डर है कि इतने विलायती चीजों को रियायत देने से हिन्दुस्तान के उद्योग धंधों का बाल्यावस्था में ही खात्मा हो जायगा। खाद्य वस्तुओं के निर्यात का ३० फी सदी, कच्चा माल और तैयार माल का ४३ फी सदी हम विलायत को भेजते हैं। और तैयार माल के कुल आयात का ६५ फी सदी मूल्य का माल हम विलायत से लेते हैं। फ़िसकल कमीशन (Fiscal commission) के अनुसार कच्चे माल के लिये रियायत की आवश्यकता नहीं, इसलिये हिन्दुस्तान को कोई लाभ नहीं है परंतु विलायत को जो कि तैयार माल भेजता है उसे रियायत दी गई। इस प्रकार विलायत को इस करार से दुहेरी लाभ हुआ।

मूंगफली, चावल और जूट का तैयार माल हमारे यहां बहुत ज्यादा होता है लेकिन विलायत में इनकी खपत थोड़ी है। इसलिये हिन्दुस्तान को कुछ भी लाभ न हुआ। बहुत से विदेशी कारखानेदारों की हिन्दुस्तान में भी फैक्टरियां (अलीमूनियम) हैं, और १० फी सदी के रियायत से वे अच्छी तरह से हिन्दुस्तानी कारखानेदारों के साथ होड़ कर सकते हैं। ब्रेजील जिसने कि केवल भाव बढ़ाने के लिये, जून १९३२ तक, दो साल में १८४५ मिलियन पौंड कीमत की कौफी समुद्र में फेंक दी, ऐसे देश के साथ होड़ करने में हमें इन रियायतों से क्या लाभ

हुआ। हिन्दुस्तान के आर्थिक इतिहास में ओटावा करार भयंकर दुर्घटनाओं में से एक है परंतु आशा है कि इसकी पुनरावृत्ति न होगी। परंतु इस प्रकार के अनेकों करार जितनी सुविधायें नहीं दे सकतीं वे सब नये विधान में व्यापारी हित-संरक्षण के जरिये प्राप्त कर ली गई हैं।

रेलवे (Railways)

रेल और जहाज, इन दो यातायात के साधनों का आपस में एक विलक्षण सहयोग रहता है। इनसे जिन कारखानों का संबंध रहता है वे इनसे एक अंदरूनी समझौता करके इस तरीके से किरायों को ठहरा लेते हैं कि देशी उद्योग धंधों पर उनका बुरा असर पड़ता है। लंकाशायर से बंबई, मद्रास या ट्यूटीकार्न को कपड़े की एक गांठ भेजने में बराबर किराया लगता है; और यह किराया कम होता है अहमदाबाद से हैदराबाद या नागपूर से दिल्ली तक के रेलगाड़ी के किराये से। बंबई से एक टन या ५ गांठे रुई की लीवरपूल भेजने के लिये २० शि० या रु० १३—५—४ लगते हैं। लेकिन उसी को अदोनी से बंबई (३०० मील) के लिये ३४ रु०, अदोनी से अहमदाबाद तक के लिये ७० रु० लगते हैं। दिल्ली से मद्रास तक का रुई के लिये कम किराया है बनिस्वत उससे और पहिले के शहरों के। इटली से हिन्दुस्तान में संगमरमर लाने में जितना किराया लगता है उससे अधिक किराया लगता है जैपुर से मद्रास संगमरमर भेजने में। आन्टवर्प या ब्रसेल्स से हिन्दुस्तान के किसी भी बंदरगाह तक लोहे के लिये जहाज का किराया १० रु० फी तौल है; लेकिन उतने ही लोहे का जमशेदपूर से नागपूर तक का रेल का किराया १३ रु० है। रुई के लिये तिरपुर से लंकाशायर तक के किराये से दिल्ली का किराया ज्यादा है। इस प्रकार के ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनके कारण देशी उद्योग धंधों की प्रगति में रुकावट पड़ी रहती है; और किराये लगाने की

प्रथा के कारण इस परतंत्र देश में इस सस्तई से विदेशी माल घुसेड़ा जाता है कि देशी वस्तुओं को उनसे सामना करना असंभव है।

हिन्दुस्तानी रेल्वेज (रेलगाड़ियों की कंपनियां) का किराया निश्चित करने की नीति किस प्रकार विलक्षण है इसे डा० एच० आर० सोहनी ने "Indian Transport" (हिन्दुस्तानी यातयात) नामक एक पुस्तिका में अच्छे ढंग से दिखाया है। उनका कहना है कि 'बंदरगाहों और अंदर के केन्द्रीय स्थानों के लिये किरायों के दर अन्य जगहों के दरों से बहुत कम हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के सामानों के लिये अधिक से अधिक और कम से कम दर सरकार निश्चित करती है। इस संबंध में सरकार की नीति हिन्दुस्तान के कृषि और उद्यम के हित में नहीं है और इसलिये अंत में रेल्वेज के हित के विरुद्ध भी सिद्ध होगी।"

रेल के दरों के बारे में हम "Do they enjoy privileges" नामक पत्रिका का कुछ भाग देते हैं:—

"हिन्दुस्तान में रेलों के दरों की योजना इस ढंग से की गई है कि इससे आयात और निर्यात व्यापार की वृद्धि होती रहे और देशी व्यापार दबा रहे। ये दर बंदरगाहों से आने वाले और अंदर से वहां जाने वाले व्यापार को ही प्रोत्साहित करते हैं और अंदर के अंदर के व्यापार को हतोत्साहित करते हैं। रेल के दर आम तौर पर देशी उद्योग-धंधों और खासकर घरेलू उद्योग-धंधों को बढ़ने नहीं देते। अक्सर यूरोपियन फर्मों को संरक्षण और सुविधाएं देने के लिये चीजों की जिन्सवारी इस ढंग से की जाती है कि उनको कम दर देना पड़ता है। श्री० मुख्तार सिंह ने केन्द्रीय असेंबली में इस संबंध में एक यूरोपियन कंपनी का उदाहरण दिया कि उसे चीनी के खास दर की सुविधा

दी गई है। उन्होंने कहा कि "चीनी के लिये रोजा* को खास दर है। क्या मैं पूँछ सकता हूं कि यह भेद-भाव क्यों किया गया? यदि कोई मनुष्य रोजा से चीनी भेजता है तो उससे उसी दर के हिसाब से किराया नहीं लिया जाता कि जिस दर के हिसाब से 'केज्यू एन्ड कं०' से लिया जाता है। मैं नहीं समझ सकता कि एक खास फर्म के लिये इस तरह भेद-भाव क्यों किया जाता है? इसका कारण यदि कुछ हो सकता है तो यही कि वह एक अंग्रेजी फर्म है और दूसरे हिन्दुस्तानी हैं।"

यह कहा जा सकता है कि 'केज्यू एन्ड कं०' एक बहुत बड़ी फर्म है और वह बहुत ज्यादा तादात में चीनी तैयार करती है. इसलिये उसके लिये खास दर रक्खे गये हैं। परंतु क्या मैं जान सकता हूँ कि खास दरों की सुविधा उन फर्मों को भी क्यों न दी गई जो कि अच्छी फैक्टरियों से चीनी तैयार करती हैं?

रेल्वे स्टोर के कंट्रोलर बहुत करके अंग्रेज ही होते हैं और ये अक्सर विलायती ही सामानों की पसंदी करते हैं। जब हम यह बात ध्यान में लाते है कि सरकार इस देश में सबसे बड़ी खरीददार है क्यों कि वह करोड़ों रुपयों का सामान सेना, रेलवेज, बंदरगाह आदि विभागों में लगने की आवश्यक वस्तुओं के लिये खरीदती है, तब हम अंदाज कर सकते हैं कि हमारे देशी उद्योग-धंधों के प्रगति को कितनी बाधा पहुँचती है।"

सरकार का सिंचाई विभाग से रेलवे विभाग की ओर बहुत ध्यान रहता है। इस बारे में श्री० आर० सी० दत्त का निम्न कथन ध्यान

---

* रोजा ई० आई० आर० पर एक स्टेशन है, यहां एक 'रोजा शूगर फैक्टरी' है।

देने योग्य हैः—

"विलायती कारखानेदारों ने सोचा कि रेलवे के जरिये हमारा माल हिन्दुस्तान के कोने कोने तक ज्यादा आसानी से और अच्छी तरह से जा सकता है वनिस्वत नहरों के; वस तुरंत कंपनी सरकार और ब्रिटिश सरकार पर पार्लियामेन्ट दबाव डालने लगी कि रेलवे लाइन बढ़ाई जायँ। रेलवे लाइन बढ़ाई गई। लेकिन इससे सरकारी आय का एक बड़ा हिस्सा खर्च हो गया।"

यह हो सकता है कि हिन्दुस्तान में पहिले पहल रेलें यौद्धिक आवश्यकताओं (Strategic purposes) के लिये बनाई गई थीं। परंतु रेलवे बनाने में जितनी पूंजी लगाई थी उस पर ४ फी सदी मुनाफा देने की जिम्मेदारी सरकार ने ली थी और कुछ रेलवेज तो नुकसान पर ही चलती रहीं। इन सब पर सरकार दुर्लक्ष कर सकती है। लेकिन सिंचाई के किसी भी हिस्से में उसका खर्च पूरा होकर लगी हुई पूंजी भी निकलने की आशा न हुई तो सरकार उस काम को हाथ में नहीं लेती। सन् १९०० तक हिन्दुस्तान को रेलवे के निस्वत कुल ३९० करोड़ रुपयों का नुकसान हुआ है, और ८० करोड़ रुपये, मुनाफे की जिम्मेदारी लेने के कारण देने पड़े। रेलवे को कंपनी के हाथ से अपने हाथ में लेने में सरकार ने कैसी दुटप्पी चालें चलीं इसका एक ताजा नमूना देना बे मौके न होगा। "सोशल आर्डर" में एक लेखक लिखते हैंः—

"हिन्दुस्तानियों के अधिक आग्रह करने पर, १९३१ में भारतीय सरकार ब्रिटिश स्टाक रखने वालों से (Stock holders) बी० एन्ड एन० डबल्यू रेलवे खरीदने को राजी हुई। इस कंपनी के ब्रिटिश मालिक सालाना डिविडेन्ड के साथ-साथ, लगभग ६० वरस पहिले हुए

'करार' के अनुसार, लगाई हुई पूंजी पर ३½ फी सदी गारन्टी किया हुआ व्याज पाते हैं। वे लगातार डिविडेन्ड पाते गये हैं और डिविडेन्ट ज्यादा ही ज्यादा होते गये—१९२३ में इस कंपनी का ११ फी सदी डिविडेन्ड था और १९३६ में १८ फी सदी था। नक़द वचत (cash reserves) इस कंपनी की आज दिन ३,१५०,००० पौं० है, जब कि लगाई हुई कुल पूंजी ३,०००,००० पौं० ही है। इस कंपनी को दी हुई सुविधा (concession) की मुद्दत बहुत पहिले ही समाप्त हो चुकी है।

सन् १९२३ में ही सरकार ने स्वयंम् ही हिन्दुस्तानी रेल्वेज के ब्रिटिश स्टाक उनके मालिकों से खरीदने का इरादा किया था। फिर उसका धीरे-धीरे हिन्दीकरण (Indianisation) करने का भी सरकार का विचार था। इसी के अनुसार ई० आई० और जी० आई० पी० रेल्वेज सरकार ने लीं। उसके बाद बी० एन्ड एन० डबल्यू का १९३१ में नंबर आया। इसी साल ब्रिटिश सरकार ने सुवर्ण मान (Gold standard) को छोड़ दिया जिसके कारण बैंकरों या साहूकारों को यह सौदा करना गुज़ारा न हुआ। इसलिये बी० एन्ड एन० डबल्यू की खरीद १९३७ के लिये स्थगित कर दी गई।

अब इसके बाद क्या हुआ? भारत मंत्री ने इस रेलवे को खरीदा तो नहीं ही बल्कि असेंब्ली को इस प्रश्न पर विचार करने का अवसर दिये बिना ही पहिले तो इस कंपनी को दी हुई सुविधा (concession) १९४२ तक बढ़ा दी और फिर—फिर जो कुछ हुआ वह सरकार की ओर से न बताया गया बल्कि उसका पता चेअरमैन के व्याख्यान से जो कि उन्होंने हिस्सेदारों की सभा में दिया था उससे

मालूम हुआ। उन्होंने इस सभा में उपस्थित सज्जनों से कहा कि "भारत मंत्री ने १९४२ के आगे भी कंपनी चलाने की इजाजत दे दी है।"

इसमें ध्यान में रखने लायक बात यह है कि कर देने वाले (tax payers) हिन्दुस्तानियों को इस रेलवे कंपनी में लगाये हुए मूल पूंजी पर ३½ फी सदी व्याज देना पड़ रहा है। अब हम इस बात को ध्यान में रखते हुए, सरकार सिंचाई की ओर किस ढंग से पेश आती है इसको देखें। दक्षिण भारत में कृष्णा और गोदावरी नदियों में सिंचाई के लिये बांध बनाने की योजना बहुत डर-डर कर पूरी की गई थी। तिस पर भी इन दोनों स्थानों में लगाई हुई पूंजी पर इतना अधिक लाभ हुआ है कि क्रमशः १९ और २२ फी सदी व्याज का फायदा हुआ। इतना होते हुए भी सरकार इन बांधो के जरिये सिंचे हुए खेतों से २५ रु० फी एकड़ के हिसाब से ज्यादा कर वसूल करती रही है (१५ ७—३७ से यह कर बंद कर दिया)। सिंचाई की **योजनाओं** को दो हिस्सों बांटा गया है—उत्पादक (Productive) और संरक्षक (Protective)। संरक्षक योजनाओं को भी कम से कम एक निश्चित हद तक उस योजना का खर्च संभालना ही पड़ता है। दस वर्ष पहिले (१९२९) एक भद्र पुरुष ने मद्रास सरकार के पास एक योजना भेजी थी। अधिकारियों ने उस पर यह राय दी कि यह योजना उत्पादक तो नहीं ही है परंतु इससे इतनी भी आमदनी नहीं हो सकती कि यह संरक्षक हो सके। लेकिन जब रेलवे का प्रश्न आता है तब सरकार इस बात पर विचार करना ही आवश्यक नहीं समझती कि यह उत्पादक होगी या संरक्षक। वे व्याज की गारन्टी

देकर रेलवे बनाने की इजाजत दे देते हैं; और वास्तव में गारन्टी देने के मानी होते हैं कि रेलवे बनवाना सरकारी या जनता के खर्च से, लेकिन मुनाफा देना दूसरों को। इसका उद्येश प्रत्यक्ष है। सैनिक आवश्यकताओं के अलावा रेल्वेज विदेशी माल देश के कोने-कोने में फैलाती हैं और हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न भागों का कच्चा माल बाहर भेजने में मदद करती हैं।

इस परिच्छेद में प्रथम ही हमने यह दिखाया है कि जहाजी और रेलवे कंपनियां मिलकर किस प्रकार पक्ष-पात-युक्त किराये लगा कर विदेशी माल फैलाने में मदद करती हैं और किस प्रकार देशी माल के फैलाव को रोकती हैं। रेलगाड़ी की लाइनें बनाते समय न तो शहरों की रचना की ओर ध्यान दिया गया है और न देहातों में से लाइन ले जाते समय स्वास्थ्य के नियमों को ही ध्यान में रक्खा गया है। बहुत से लोगों का विश्वास है कि अंग्रेज ही मलेरिया बुखार को हिन्दुस्तान में लाये हैं यद्यपि इनका विश्वास सर्वथा ठीक नहीं है। जैसे बिना आग के धुंआ हो ही नहीं सकता उसी प्रकार इस गलतफहमी को भी अप्रत्यक्ष ही क्यों न हो कुछ न कुछ आधार अवश्य ही होगा। वास्तव में बात यह है कि रेल की लाइनों के बांधों ने पानी के नैसर्गिक बहाव को रोका है और यह बंगाल में विशेष कर हुआ है। बंगाल में इन बांधों के कारण पानी के बड़े-बड़े तालाब और झीलें बन जाती हैं जिनमें कई महीनों तक पानी बना रहता है। इन बांधों में पानी के बहाव के लिये रास्ते रहते हैं लेकिन वे इतने कम पड़ते हैं कि जल्दी से जल्दी पानी नहीं बहा ले जा सकते। इसका परिणाम यह होता है कि लोगों को करीब-करीब पानी ही में महीनों रहना पड़ता है और उस बंधे पानी

7089

में मलेरिया के कीड़े पैदा हो जाते हैं जिससे लाखों की संख्या में बंगालियों के प्राण जाते हैं। यदि सरकार ने विलायत के व्यापार की ओर कम ध्यान देकर हिन्दुस्तानियों के स्वास्थ्य की ओर अधिक ध्यान दिया होता तो वे इस तरह बेपरवाही की रचना कभी भी न होने देते और न सिंचाई की योजनाओं की ओर दुर्लक्ष ही करते। लेकिन सबसे अधिक ध्यान तो उनका विलायत के आर्थिक हित का रक्षण करने की ओर रहता है।

इस परिच्छेद को समाप्त करने के पहिले वेजवुड कमेटी की शिफारसों, की ओर जो कि १९३७ में प्रकाशित की गई है, पाठकों का ध्यान आकर्षित करना असामयिक न होगा। इन शिफारसों का उद्देश्य यह है कि फेडरल सरकार को अपनी आय में रेलवे की आय न लेना चाहिये। वास्तव में इसके अंदर छिपा हुआ उद्देश्य है प्रांतीय आर्थिक उगम कम करना, क्योंकि नेमियर रिपोर्ट के अनुसार एक दिन प्रांतीय सरकारों को रेल्वेज से आर्थिक मदद मिलने वाली है। अब इस बात पर जोर दिया जाता है कि रेलवेज की आय केवल रेलवेज के लिये ही लगाना चाहिये।

१९३५ के विधान में एक और रोक रक्खी गई है, और वह यह कि भविष्य के हिंदुस्तानी संघ शासन (Federation) में रेलवेज की तो तबदीली हो सकती है लेकिन किरायों के दरों में नहीं हो सकती है। किरायों के दर रेलवे बोर्ड निश्चित करेगा जिसे कि गवर्नर जनरल उसे दिये हुए खास अधिकार के अनुसार मनमानी नियुक्त करेगा। रेलवे बोर्ड स्वयं पार्लियमेन्ट के एक्ट के अनुसार स्थापित किया जायगा जिसमें कि भारतीय सरकार का कोई अधिकार न रहेगा। अर्थात पार्लि-

यामेन्ट बोर्ड स्थापित करेगी और गवर्नर जनरल उसके मेंबर नियुक्त करेगा। ये लोग किरायों के दर निश्चित करेंगे जो कि वास्तव में विदेशी व्यापार अच्छी तरह चलाने की कुंजी है। नहीं तो किस तरह आस्ट्रेलिया का गेहूं पंजाब के गेहूं से होड़ करेगा या किस तरह इटली का संगमरमर जैपूर संगमरमर से होड़ कर सकेगा? रेलवे के दर उन तीन या चार चीजों में से है जिनके कारण देशी माल से विदेशी माल बहुत दूर से आने पर भी उनसे सस्ता बिक सकता है। अन्य तीन चीजें है विनिमय, चलन और आयात-निर्यात कर।

——:०:——

जहाज (Shipping)

रेलवे कंपनियां और जहाज की कंपनियों में एक ऐसा करार होता है कि यदि बंगाल का एक किसान अपना जूट बाहर भेजना चाहता है तो उसे जहाज की खास कंपनी से माल भेजना चाहिये नहीं तो उसके गांव से जहाज तक माल ढोने के लिये रेलवे तैयार नहीं होती। जब जूट की मिलें जूट पैदा करने वालों से उसे खरीदने का करार करते हैं तो उस करार में यह भी एक शर्त रहती है कि नामजद जहाज की कंपनी से ही माल भेजा जाय। और यह कंपनी ऐसी होती है जिसमें अंग्रेज व्यापारियों का हित होता है। यदि जूट पैदा करने वाले उस कंपनी को अपना माल नहीं देते तो जूट की मिलें भी उनसे जूट नहीं खरीदती।

जहाजी कंपनियों के बारे में सर्व प्रसिद्ध है कि जहाजी कंपनियों ने एक बट्टे की प्रणाली रक्खी है जिसके जरिये व्यापारी हमेशा के लिये उस कंपनी के गुलाम हो जाते हैं। वह प्रणाली इस प्रकार है:—यदि व्यापारी एक साल तक खास-खास कंपनियों को अपना सामान देते रहें तो उनको दूसरे साल भेजे हुए माल के किराये में बट्टा मिलेगा, लेकिन वह भी साल के अंत में। इसमें चाल यह है कि इस साल का बट्टा अगले साल के किराये में मुजरा होगा, यानी अगर अगले साल सामान ही उस कंपनी को न दिया तो बट्टा भी न मिलेगा। अगर बट्टा लेना है तो झकमारो और उन्हीं के जरिये माल भेजो।

अब इसके बाद किरायों के दरों की लड़ाई। इस संबंध में हम, आनरेबुल

मि० पी० रामदास पन्तलू ने 'त्रिवेणी' में व्यापारी जहाजों (Mercantile marine) पर लिखे हुए लेख से उद्धृत करते हैं। विदेशी जहाजी कंपनियां अपने दर बहुत ज्यादा कर देती हैं जब कि उनसे होड़ करने के लिये कोई नहीं रहता, और जब इनसे होड़ करने के लिये कोई खड़ा होता है तो ये अपने दर इतने कम कर देते हैं कि वह बेचारा अपना व्यापार समेट लेता है। इस बारे में Fiscal commission (आर्थिक कमीशन) ऐसे तज्ञ समूह का कथन इस प्रकार है:—

"बहुत कुछ रेलवेज के दरों की शिकायतों की तरह ही समुद्रतट के जहाजों के दरों की शिकायतें हमें मिली हैं। इनके कारण भिन्न हैं। परंतु उनका प्रभाव बहुत कुछ समान ही कहा गया है, अर्थात् विदेशी माल की तुलना में देशी वस्तुओं को यातायात में कठिनाई पड़ती है। देशी वस्तुओं को विदेशी वस्तुओं की तुलना में जो नैसर्गिक (अर्थात् दूरी का) संरक्षण रहता है वह इस प्रकार दरों के भेद-भाव से व्यर्थ ही नहीं हो जाता परंतु इससे भी गहरा असर डालता है। समुद्रतट के जहाजों के दर इतने अधिक क्यों हैं इसका कारण है 'एकाधिकार' (monopoly)। विदेशी जहाजी कंपनियां जब देखती हैं कि कोई हिन्दुस्तानी जहाजी कंपनी स्थापित हो रही है तो वे समुद्रतट के किरायों के दरों को इतना कम कर सकते हैं कि चाहे उनको लाभ के बजाय नुकसान ही क्यों न हो। इस कारण हिन्दुस्तानी कंपनी को अपना काम बंद करना पड़ता है, क्योंकि कोई भी देशी कंपनी बहुत दिनों तक नुकसान उठाते हुए काम नहीं कर सकती। सिर्फ एक सप्ताह पहिले ही श्री वालचन्द हीराचन्द ने, सींधिया स्टीम

नेविगेशन कंपनी के हिस्सेदारों के सम्मुख व्याख्यान देते समय दरों की लड़ाई का नया रूप उन्हें वताया। श्री हीराचन्द्र ने साफ ही साफ कहा कि विदेशी कंपनियां दरों को इस तरकीब से निश्चित करती हैं कि उनका उद्देश यह होता है कि एक टन सामान भी हिन्दुस्तानी जहाजों को न मिल सके। इसकी उन्हें बिलकुल परवाह नहीं रहती कि इस लड़ाई में कितना नुकसान होगा। श्री हीराचन्द ने उपस्थित किये दरों की लड़ाई के वर्णन को पढ़ने पर यह पूरी तौर से साबित होता है कि विदेशी कंपनियां हिन्दुस्तानी कंपनियों का व्यापार मारने के लिये दरों को वेमुनाफे की कक्षा तक भी ले जाते हैं। विदेशी कंपनियां 'ट्रैम्प' जहाज भी रखते हैं जो कि टाइमटेबुल के अनुसार सफरें नहीं करते। इसलिये वे और भी कम दरों पर सामान ले जाते हैं। इससे दरों की लड़ाई और भी कठिन हो जाती है।

समुद्रतट के लिये किरायों के दर कम करने पर भी विदेशी कंपनियां अपने हिस्सेदारों को अधिक डिविडेन्ड दे सकती हैं। इसका कारण यह है कि उनको अन्य वहुत सी सुविधायें हैं। यद्यपि समुद्रतट के व्यापार में हिन्दुस्तानी कंपनियां आ जाने से विदेशी कंपनियों को अपने दर (समुद्रतटीय) घटाने पड़े हैं, फिर भी वहुत से सामुद्रिक एकाधिकार उनहीं के हाथ में हैं, और सरकार से भी उन्हें डांक ले जाने के ठेके मिलते हैं। इन कारणों से उन्हें काफी मुनाफा हो जाता हैं। इसके साथ ही एक वात यह भी है कि हिन्दुस्तान का सारा विदेशी व्यापार विदेशी व्यापारी फर्मों के हाथ में हैं, इस कारण यहां का सव विदेशी व्यापार इन्हीं विदेशी कंपनियों को ही मिलता है। फिर विलायती जहाज़ी कपनियां और रेल्वे कंपनियां जव मिल जाती

हैं तब उस समय भी देशी जहाजी कंपनियों को नुकसान होता है। मर्केन्टाइल मेरीन कमेटी के सामने सबूत पेश किया गया है कि एक जहाजी कंपनी और रेल्वे कंपनी में ऐसा करार हुआ जिसका उद्देश्य था व्यापार को एक खास बंदरगाह की ओर खींचना क्यों कि वहां उनको अधिक सुविधायें मिलती थीं। इतनी बातें यह सिद्ध करने के लिये काफी है कि खुले व्यापार की नीति हमारे जहाजी व्यापार के उन्नति में बाधक है; और हिन्दुस्तानी जहाजी व्यापार के लिये आवश्यक सुविधायें उपस्थित करने पर मरकेन्टाइल मेरीन कमेटी ने बहुत ठीक ही जोर दिया है।

अब यह समाधान की बात है कि १५ नवबर १९३७ से वे कंपनियां, जो कि Shipping Conferences के सदस्य हैं, ब्रिटिश हिन्दुस्तान के लिये किरायों के दर बढ़ा रहो हैं।

भारतीय सरकार का रुख इस ओर किस प्रकार है अब हम इसे देखेंगे। समुद्रतट का जहाजी व्यापार केवल हिन्दुस्तानी कंपनियों के लिये ही सुरक्षित रखने के लिये भारतीय सरकार आज भी प्रतिकूल है। १९२८ के दिसंबर में कलकत्ते में एक औद्योगिक प्रदर्शनी (Industrial Exhibition) की गयी थी। प्रदर्शनी में एक पिरेमिड (मीनार) बनाकर दिखलाया गया था कि जहाजी व्यापार में कौन देश कितना अधिक व्यापार हस्तगत करता है। हिन्दुस्तान का चौबीसवां नंबर था। विलायत, उस पिरेमिड का एक बड़ा हिस्सा घेरे हुए था, परन्तु हिन्दुस्तान को करीब करीब सिरे पर ही जरा सी जगह मिली थी। हिन्दुस्तान का नीचे से चौथा नंबर था यानी इससे कम इस व्यापार को करने वाले केवल तीन ही राष्ट्र थे—टर्की, पोलैन्ड और

चिली। तब से इन तीनों देशों ने अपने समुद्रतट के व्यापार को देशी जहाजी कंपनियों के लिये सुरक्षित कर लिया है, परंतु इसी योजना को श्री हाजी जी ने असेंबली में पेश किया था जिस पर कि लार्ड इर्विन ऐसे उदात्त चित्त वाइसराय ने भी यह कहा कि इस योजना का अर्थ है दूसरे का अधिकार छीनना। यह कहा जाता है कि अपने अधिकार सुरक्षित रखने के लिये और इस योजना को रद्द कराने के लिये ब्रिटिश जहाजी व्यापारियों ने १५ लाख पौंड जमा किये थे।

पिछले महायुद्ध के काल की एक घटना ध्यान में रखने योग्य है। इस काल में मसलीपट्टम के जहाज बनाने वाले एक व्यापारी को एक जहाज बनाने के लिये प्रोत्साहन दिया गया। उसे इसमें लाभ भी हुआ। अधिकारियों ने भी उसे और जहाज बनाने के लिये कहा। उसने इसमें काफी द्रव्य लगाया। उसका आखिरी जहाज, जिसमें डेढ़ लाख रुपये खर्च हो चुके थे, जब कि बन कर तैयार हो गया संधि घोषित की गई। उसके बाद क्या हुआ? सरकार का एक आज्ञापत्र निकला कि आक्याब से कारोमन्डल तट तक चावल लाने के लिये केवल ब्रिटिश जहाजी कंपनियों को ही लाइसेन्स मिला है। बेचारा व्यापारी जिसे कि उपाधि भी मिल गई थी कहीं का न रहा। इसके साथ साथ उसके ऊपर (पिछले साल के मुनाफे पर) ७२,००० रु० का इनकमटैक्स लादा गया। २०,००० रुपये उसके अपील में लगे जिसके बाद टैक्स ७२,००० रु० से ४७,००० रु० कर दिया गया—कोई खास मुनाफा न हुआ। इतना आर्थिक नुकसान होने के ६ साल बाद उसने अपना बड़ा जहाज तोड़ कर २४ छोटी नावें बनवाई जिसमें उसे २५,००० रुपये लगे। हिन्दुस्तानी जहाज बनाने वालों के साथ इस तरह का

व्यवहार किया जाता है।

अस्तु अब हम फिर अपने विषय पर आवें। देशी जहाजी व्यापार को बढ़ने नहीं दिया गया। समुद्र-पर के व्यापार में हिन्दुस्तानी केवल दो फी सदी और विदेशी जहाजी कंपनियां ९८ की सदी हिस्सा पाती हैं। समुद्रतट के व्यापार में विदेशी कंपनियों का ९० फी सदी और हिन्दुस्तानी कंपनियों का १० फी सदी प्रभुत्व है। मालवर विदेशी कंपनियों के साथ बेचारी छोटी छोटी देशी कंपनियों को किस तरह होड़ करनी पड़ती है यह तो पिछले पन्नों में बताया ही गया है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये देशी और विदेशी कंपनियों की एक कानफरेन्स ३ जनवरी १९३० को बुलाई गई। इसके सभापति वाइस-राय महोदय नियुक्त किये गये थे। इस कानफरेन्स से समुद्रतट के जहाजी व्यापार के बारे में समझौते का कोई भी मार्ग न निकल सका, परंतु इसका कारण यह न था कि हिन्दुस्तानी नेता अनहोनी मांगें पेश कर रहे थे। वास्तविक कारण यह था कि ब्रिटिश कंपनियां न्याय की मांगे भी देने को राजी न थे।

एक और बात जो हिन्दुस्तानी जहाजी व्यापार को दबा रही है वह है जापानी जहाजी व्यापार। परंतु इस बारे में शिमला से एक पत्रक (communique) प्रसिद्ध हुआ, जो कि इस प्रकार है: – "यह पता लगा है कि हिन्दुस्तान के समुद्रतट के यातायात में जापानी जहाजों के कारण होने वाली होड़ को रोकने की योजना हिन्दुस्तान की सरकार ने तैयार कर ली है। रास्ता साफ करने के लिये सर्व प्रथम १८५० के एक्ट में तबदीलियां की जायेंगी, क्योंकि इसके कारण किसी भी राष्ट्र को समुद्र तट का जहाजी व्यापार खुला था। इसलिये सरकार समुद्र-

तटीय जहाजी व्यापार पर नियंत्रण कर सकने का अधिकार प्राप्त करना चाहती है। उसके लिये नियमानुसार भारत मंत्री से पुराने एक्टको बदलने और नया कानून पास करने के लिये अनुमति आने की राह देखी जा रही है, और आशा है कि केन्द्रीय असेंबली के शिमला की बैठक में सरकार नये प्रस्ताव रख सकेगी।

"सरकार के इस एकाएक भड़कने का मुख्य कारण तो है जापानियों का इस व्यापार में घुसना। कभी-कभी जरमन जहाज भी कभी कभी हिन्दुस्तानी समुद्रों में व्यापार कर लेते थे। ......"

इस परिच्छेद को समाप्त करने के पहिले हम पाठकों का ध्यान, जहाजी व्यापार के बारे में, नये विधान की ओर आकर्षित करते हैं। १९२८ में जब कि Coastal Shipping Bill (समुद्रतट के जहाजी व्यापार का बिल) असेंबली में पेश किया गया था, तब भारत मंत्री ने अपने कानूनी सलाहगारों से राय ली थी कि सरकार इस बिल को असेंबली में आने से रोक सकती है या नहीं? इस पर उन्होंने राय दी थी कि सरकार बिल को असेंबली में आने से नहीं रोक सकती। परंतु १९३५ के नये विधान के अनुसार गवरनर जनरल को अधिकार है कि इस प्रकार के कानूनों को वह असेंब्ली में आने के पहिले ही रोक सकता है। अर्थात् हाजी जी के बिल की तरह का समुद्रतट के व्यापार का बिल बिना गवरनर जनरल के इजाजत फेडरल धारासभाओं में नहीं आ सकता। नये विधान में हमारी इतनी प्रगति हुई। संसार में ऐसा कोई भी सभ्य और सुसंस्कृत राष्ट्र नहीं है जिसके समुद्रतट का व्यापार वहां के राष्ट्रीय लोगों को सुरक्षित न रक्खा गया हो।

कोयला (Coal)

संसार के व्यापार क्षेत्र में विलायत का अधिक प्रभुत्त्व होने का कारण यह है कि वहां कोयले और लोहे की अथाह खानें हैं। जितनी खाद्य वस्तुएं और कच्चा माल वाहर से वह लेता उसका मूल्य वह इन दो वस्तुओं से या इनसे वनी हुई वस्तुओं के जरिये चुकाता है। चूंकि विलायत में केवल इतना ही अन्न उत्पन्न होता है जो कि उसे पांच सप्ताह ही चल सकता है इसलिये उसे साल के वाकी के दिनों के लिये यानी ४७ सप्ताहों के लिये वाहर से अन्न सामग्री मंगाना आवश्यक है। अब तो यह परिमाण और भी वढ़ गया है।

ब्रिटिश निर्यात (वहां से वाहर जाने वाला माल) की लोहा और कोयला ही जड़ है। परंतु अब इस मामले में भी विलायत को पिछड़ना पड़ रहा है। संसार की सालाना कोयले की उपज १२०० मिलियन मीटरिक टन है और कुछ काल तक यह इतनी ही रही। परंतु जब से जल-विद्युत शक्ति (Hydro-Electric Power) और तेल अधिक मात्रा में उपयोग में लाया जाने लगा तब से कोयले की खपत कम होने लगी। अमेरिका के युक्त देश में १९१३ में ८४ फी सदी शक्ति कोयले से उत्पन्न की जाती थी परंतु १९२७ में वही ६४ फी सदी रह गई। संसार में जल-विद्युत शक्ति का दिन-दिन अधिक उपयोग में आना विलायत के कोयले के उत्खनन व्यापार को कुठारघात ही है। १० मिलियन कोयले से जितनी शक्ति उत्पन्न होती है उसके वरावर सालाना जल-विद्युत शक्ति, इटली अपने कल कारखानों के लिये उत्पन्न करता

है। अर्थात् यह विलायत के कोयले के उत्त्खनन व्यापार को प्रत्यक्ष हानि है। जब कि मि० थामस मजदूर-सरकार (Labour Government) के मिनिस्टर हुए और बेकारी का मोहकमा भी इन्हीं के सुपुर्द था, तब उन्होंने विलायती कोयले के नमूनों को लेकर संसार यात्रा की। केनाडा में उन्होंने लोगों से याचना की कि और जगहों के कोयले के बजाय आप अंग्रेजी कोयला पसंद किया कीजिये। परंतु केनाडा निवासियों ने नोवा स्काशिया और दक्षिण वेल्स से कोयला लेना ही ज्यादा पसंद किया।

हिन्दुस्तान में कोयले के व्यापार में कुछ लोगों के किस तरह के व्यवहार रहते हैं और उसके वर्गी करण में किस तरह पक्षपात किया जाता है इस पर निम्नलिखित* अच्छा प्रकाश डालता है :—

"रेल्वेज की कमेटी (Railways' Committee) के सामने अपना बयान देते समय श्री घोष ने इस विश्वास को बिलकुल अस्वीकृत किया कि पहिले नंबर का कोयले का व्यापार अंग्रेजी फर्मों के हाथ में है। उन्होंने आगे कहा कि 'दिखाई यह देता है कि कोयले का वर्गीकरण करते समय ध्यान इस ओर दिया जाता है कि कोयले की खान अंग्रेजों की मिलकियत में है या हिन्दुस्तानियों के (इसी को दूसरे शब्दों में लिखना मानी कोयले का वर्गीकरण करने के बजाय उनके मालिकों का वर्गीकरण किया जाता है)। उन्होंने दृढ़ता पूर्वक कहा कि वही कोयला यदि अंग्रेजों के हाथ में होता है तब पहिला नंबर रक्खा जाता है और जब हिन्दुस्तानियों के हांथ में रहता है तब दूसरा नंबर ठहराया जाता है।

---

*N.B —यह 'यंग इंडिया' में निकले हुए लेखों की Do they enjoy Privileges' नामक पुस्तक से लिया गया है।

उन्होंने इसके लिये एक उदाहरण भी दिया कि मुग्मा के पास चटावर की एक कोयले की खान पहले श्री० कुंज विहारी चौधरी के अधिकार में थी परंतु अब वह घेलिअर्स लिमिटेड के हाथ में है; और इस बीच वह और भी लोगों के हाथों में रही थी। घोश साहब कहते हैं कि जब तक उसका स्वामित्व हिन्दुस्तानियों के हाथ में था वहां का कोयला कोई खरीदता ही न था परंतु अब वही कोयला खानों के इंजीनियर की राय में नंबर वन का कोयला हो गया।

'यंग इंडिया' में निकले लेखों के लेखक जिनका कि ऊपर जिकर कर चुके हैं, निम्नलिखित कुछ मजेदार बातें हमें बताते हैं :—

"हिन्दुस्तान की रेल्वेज के मिलकियत की जब तक कोयले की खानें न थीं तब तक वे यदाकदा ही हिन्दुस्तानी खानों से कोयला खरीदते थे इस बहाने पर कि यह कोयला घटिया होता है। अब वे अपनी खानों का कोयला इस्तेमाल में लाते हैं जो कि हिन्दुस्तानियों के स्वामित्व की खानों से निकलने वाले कोयले से किसी तरह अच्छा नहीं होता।

खान समिति (Mines Board) में मुख्य स्वास्थ्य अधिकारी (Sanitary Officer) बहुत करके यूरोपिअन ही रहता है यद्यपि पढ़े लिखे, गुणी हिन्दुस्तानी उपलब्ध हैं। इसका कारण केवल यही है कि खानों के यूरोपिअन स्वामी हिन्दुस्तानी को इस पद पर देखना पसन्द नहीं करते।

खानों का व्यापार चलाने में यूरोपिअन कंपनिओं को पक्षपातयुक्त सुविधायें दी गई हैं। एक हिन्दुस्तानी ने एक जगह का भूगर्भ निरीक्षण किया और उसका रिपोर्ट सरकार के पास भेजा; और इस बीच सरकार

ने उस जगह के अच्छे-अच्छे टुकड़े यूरोपियन कंपनियों को दे दिये।

छोटा नागपूर की सब से अच्छी जमीनें जिनमें से अभ्रक निकलता है वे सब यूरोपियनों को पट्टे पर दे दी है, और इन्होंने हिन्दुस्तानियों को फिर पट्टे पर दी हैं।

"इतनी रियायतें, सुविधायें और मदद सरकार से तुरंत मिलने पर भी जब यूरोपियन फर्में देखती हैं कि वे बराबरी से हिन्दुस्तानी फर्मों से होड़ नहीं कर सकती तब वे सरकार पर दबाव डाल कर कोई ऐसा कानून पास करवा लेती हैं जिससे कि हिन्दुस्तानियों को और कठिनाइयां होने लगें। इसका उदाहरण है मायका (अभ्रक) बिल जो कि भयंकर विरोध रहते हुए भी बिहार काउन्सिल से पास कराया गया।"

चलन और मुद्रण

(Currency and Coinage)

भारतवर्ष का यह एक दुर्भाग्य है कि यहां ऐसी चलन प्रणाली नहीं है जिस पर कि जनता का पूरा पूरा विश्वास हो। प्रत्येक राष्ट्र में एक-धातु चलन प्रचलित हैं परंतु इस अभागे देश की चलन दो धातुओं के पहिये पर चल रही है; जिसका एक पहिया राष्ट्रीय काम के लिये और दूसरा अंतरराष्ट्रीय व्यवहारों को निपटाने के लिये योजित किया गया है।

सन् १९०३ में लार्ड कर्जन ने हिन्दुस्तान में सुवर्णमुद्रा चलाना निश्चित किया और उसकी पूर्व-तैयारी हिन्दुस्तान के लिये स्वर्ण विनिमय मान (Gold Exchange standard) मान्य करके की। इसके कारण रुपये का मूल्य घट गया और इस कारण हुई वचत का एक कोष बनाया गया जिसको कि स्वर्ण-विनिमय-मान कोष कहते हैं। इसकी तादात अब बहुत ज्यादा हो गई है, और साखपत्र का कोष (Fiduciary reserve) और यह कोष मिल कर २३५ करोड़ रुपये होता है। लेकिन बदनसीबी तो यह है कि यह द्रव्य विलायत में रक्खा जाता है। भारत मंत्री उसका उपयोग, अगर पूरे का नहीं तो कुछ अंश का तो अवश्य ही, ब्रिटिश व्यापारी फर्मों को दो-तीन फी सदी व्याज पर पखवारे-पखवारे के लिये कर्ज देने में करता है। जब कि भारतीय सरकार स्वयं ४ से ६ फी सदी सूद पर कर्ज लेती है तो क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि उसका द्रव्य दूसरों को कम सूद

पर विलायत में बांटा जाय? और वह भी इसलिये नहीं कि उससे हिन्दुस्तान के व्यापार या उद्योग धंदों को कुछ लाभ होता हो; परंतु उसका ब्रिटिश व्यापार की उन्नति और प्रचार कार्य में विनियोग होता है। इस प्रकार प्राप्त किया हुआ द्रव्य विलायती व्यापारी हिन्दुस्तान में नयी तर्ज की, नोंक-झोंक की, दिखावटी और भड़कीली सटरम-पटरम वस्तुएं लाकर अच्छी अच्छी जगहों में जगमगाती दूकानें रखकर हिन्दुस्तानियों ही के मत्थे उन चीजों को मढ़ कर गहरा मुनाफा उठाते हैं। सर डेनियल हेमिल्टन, कोष को विलायत से हिन्दुस्तान में लाने के बारे में एक तप तक झगड़ते रहे। परंतु ह्वाइट हाल और दिल्ली में के बड़े बड़े आर्थिक-अधिकारियों ने प्रत्येक अवसर पर कोष की तबदीली का विरोध ही किया। हां! पर आखिरी करेन्सी कमीशन, अर्थात् हिल्टन यंग कमीशन नें यह अवश्य शिफारिस की है कि इस कोष को हिन्दुस्तान ही में रक्खा जाय, परंतु भारतीय सरकार इस शिफारिस को कार्यरूप में रखने की जरा भी परवाह नहीं करती। सर डेनियल हेमिल्टन ने इस संबंध में एक बहुत ही सुंदर योजना रक्खी थी; और उनकी योजना बहुत सरल भी है। २३५ करोड़ रुपयों के नीव पर एक अखिल भारतीय बैंक स्थापित की जाय। फिर यह बैंक इसकी तिगुनी रकम के डिबेंचर निकाले। इस प्रकार बैंक की कुल पूंजी ९४० करोड़ हो जायगी। इसमें से २३५ करोड़ सोना और चांदी धातु और प्रथम-श्रेणी के साख पत्र, जो कि बैंक की नक़दी पूंजी (fluid resources) हो, और डिबेंचर के ७०५ करोड़ का नीचे दिये हुए प्रकार से विनियोग करना चाहिये :—

सब से पहिले ६१५ करोड़ रुपया किसानों पर का कर्ज अदा करने

के काम में लगाया जाय, और इसकी वापिस करने की मुद्दत काफ़ी ज्यादा होनी चाहिये। इसके बाद बचे ६७ करोड़ जिसमें से २० करोड़ सहकारी संस्थाओं के प्रचार कार्य के लिये देना चाहिये, १५ करोड़ म्युनिसिपल डिबेंचरों के लिये, २० करोड़ रेल्वे की उन्नति के लिये और बचे हुए ३३ करोड़ निकास की नालियां (dange), बंगाल का मलेरिया, और पंजाब, संयुक्त प्रांत और मध्य प्रांत के लिये सिंचाई की योजनाओं में खर्च करना चाहिये। इससे जो कुछ अधिक पैदावार होगी वह डिबेंचरों के व्याज को अदा कर सकेगी। इस प्रकार कलम के ज़रा चलने से ही, आप किसानों के सर पर लदा हुआ कर्ज हटा कर उन्हें माननीय नागरिक बना सकते हैं, लेकिन इसके मानी यह है कि विलायत से हिन्दुस्तान को द्रव्य ले आना पड़ेगा जिसकी कि मदद अंग्रेजों को बहुत ही मुनाफे के साथ होती आई है क्योंकि यह द्रव्य बहुत सस्ते व्याज पर इनको मिलता है। परंतु इस संबंध में हुई गंभीर एवं शोचनीय घटना जो कि विनिमय से संबंध रखती है हम स्वतंत्र परिच्छेद में वर्णन करेंगे।

———

विनिमय (Exchange)

यह तो सब को मालूम होगा कि थोड़े ही दिनों पहिले विनिमय १ शि० ४ पें० प्रति रुपये के दर पर निश्चित था। और २३६ करोड़ का कोष जो विलायत में इकट्ठा किया गया था वह १५ रु० फी पौंड के हिसाब से जमा किया गया था। परंतु महायुद्ध के काल में विनिमय १ शि० ५ पें० से २ शि० १० पें० तक चढ़ा. और १९२२ के शुरुवात में तो विनिमय २ शि० १० पें० पर जमा ही हुआ था। इसी काल में ६ सप्ताह में हिन्दुस्तान में रहने वाले अंग्रेजों ने रिवर्स काउन्सिलों के जरिये १२० करोड़ रुपये विलायत भेजे। उस काल में ७ रु० ८ आ० हिन्दुस्तान के सरकारी खजानों में देने से विलायत में उन्हें एक पौंड मिल जाता था; इसी को दूसरे शब्दों में लिखना यानी भारत मंत्री ७ रु० ८ आ० फी पौंड के हिसाब से उस द्रव्य को विलायत में बेंचता था जिसे कि उसने १५ रु० फी पौंड के हिसाब से इकट्ठा किया था। परिणाम इसका यह हुआ कि ६ सप्ताह में ६० करोड़ का नुकसान हो गया। सरकार की निगाहों से उतरे हुए अर्थात् राष्ट्रीय समालोचक हिन्दुस्तानी और ब्रिटिश सरकारों की इस हरकत को 'कानूनी लूट' और 'कोरी डकैती' ही कहते हैं।

हरएक आदमी अब यह जानने लगा है कि विनिमय ऊंचा होने से देश में आयात अधिक होने लगती है अर्थात् अधिक मात्रा में विदेशी माल आने लगता है। यानी उतनी ही मात्रा में निर्यात को धक्का पहुंचता है। अगर आपका लड़का विलायत में हो या आप विलायत से

कपड़ा मंगाना चाहते हों (अगर विनिमय २ शि० १० पैं० फी रुपया हो) तो यहां पोस्ट आफिस में ७ रु० ८ आ० जमा कर दीजिये जिसके बदले में आपको १ पौंड का पोस्टल आर्डर मिल जायगा जिसका कि भुगतान विलायत में होगा। इस प्रकार आयात करने वाले व्यापारी मुनाफा उठाते हैं और इसी कारण उतनी मात्रा में निर्यात करने वाले व्यापारियों को नुकसान उठाना पड़ता है।

महायुद्ध के पहिले काफी बरसों तक १ शि० ४ पैं० विनिमय का दर रहा। १९२५-२६ में सरकार ने इसको १ शि० ६ पैं० किया उसका कारण केवल यही था कि आयात व्यापार को उत्तेजना मिले। इसका परिणाम भी वही हुआ जो होना था अर्थात् हिन्दुस्तान के बहुत से बड़े-बड़े व्यापारियों का कारबार चौपट हो गया। हम जानना चाहते हैं कि विनिमय में ऐसा फेर-बदल क्यों किया जाता है जो कि ब्रिटिश कारखानेदारों को हितकर हो और यहां के किसानों की दलिद्रता बढ़ाने वाला हो। इसके अतिरिक्त जो कि प्रत्यक्ष है कि इससे विलायत के आर्थिक हित को विशेष अनुकूलता प्राप्त होती है, और कोई बात दिखाई नहीं देती। यहां पर यह बात सूचित कर देना चाहते हैं कि चलन और विनिमय, रेल्वे के दर और आयात निर्यात कर, ये दोनों हिन्दुस्तान के विदेशी व्यापार की कुंजियां हैं अर्थात इन्हीं चीजों से विदेशी व्यापार घटाया बढ़ाया जा सकता है।

१९३१ में २१ से २३ सितंबर तक ३ दिन की छुट्टी बैंक आफ इंग्लैन्ड ने घोषित की, क्योंकि उसके खजाने में सोने की कमी हो गई थी, तो विलायत ने स्वर्णमान से अपनी चलन को विलग्न कर दिया। विलायत की इस हरकत को देख कर अन्य राष्ट्रों ने भी अपनी

चलनों के विनिमय अनुपात को इस ढंग से बदल दिया कि जिसमें दूसरे देशों से माल मंगाने में अपने देश को नुकसान न पहुंच सके। परंतु जब सभी देशों ने वही चाल अपने यहां भी खेली तो पहिले चालबाज की धूर्तता निष्फल हो गई। जैसे कि एक कुंड के चारों ओर के किसान यह विचार करें कि यदि हम अपने खेत में नाली बनावें तो हमें औरों से अधिक पानी मिल सकेगा। परंतु पहिले को नाली बनाते देर न लगी कि दूसरों ने भी अपने-अपने खेतों की तरफ नालियां बना लीं तो क्या होगा? सभी खेत के मालिक समान ही दशा में रहेंगे। स्वतंत्र राष्ट्र इतनी दक्षता से अपने विनिमय को नियंत्रित करते रहते हैं। परंतु भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जिसका विनिमय और चलन ब्रिटिश लोगों के द्वारा नियंत्रित किया जाता है और वह भी इस दृष्टिकोण को सामने रखते हुए कि विलायत के आर्थिक हित को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष, किसी भी रूप से आघात न पहुँच सके।

कैसा भी हो पर १९३५ के विधान के पहिले चलन और विनिमय दोनों पर केन्द्रीय असेंब्लीका अधिकार था। १९२८ में जब कि १८ पेंस के अनुपात का कानून बनाया गया था, उस समय सरकार को अपनी सारी शक्तियां लगा देनी पड़ी थी तब कहीं जाकर कुल तीन वोटों से सरकार की विजय हो सकी। परंतु आज की धारा सभाओं से चलन और विनिमय के पुराने अधिकार छीन लिये गये हैं। न तो वे रुपये की चांदी के वजन में फ़रक कर सकते हैं, न तो कागजी चलन के साखपत्र से आधारित कोष (Fiduciary Reserve) में और न स्वर्ण कोष ही में कोई फ़रक कर सकते हैं। अब ये अधिकार १९३५ के एक्ट के अनुसार, रिजर्व बैंक को दे दिये गये हैं जिसमें कि कुल १५ डिरेक्टरों में केवल

८ ही चुने हुए होंगे; और यह संख्या भी बैंक स्थापित होने के पांचवे साल पूरी होगी। रिजर्व बैंक की घटना और नियमों में अधिक प्रवेश न करके केवल इतना ही कहना काफी होगा कि चलन और विनिमय पर रिजर्व बैंक का पूर्ण अधिकार और नियंत्रण रहेगा और धारा सभाएं इसमें कोई हस्तक्षेप न कर सकेंगी जब तक कि गवर्नर जनरल की अनुमति वह प्राप्त न कर लेगी। रेल्वे बोर्ड की तरह इसे भी काफी सुरक्षित रक्खा गया है, केवल इसीलिये कि हिन्दुस्तान के अंदर के ब्रिटिश व्यापार को किसी प्रकार की चोट न पहुंच सके।

—:०:—

डाक महसूल और बैंक चेक
(postage and Cheque)

हमने पीछे बताया है कि नमक से लेकर सेना विभाग तक के प्रबंध में यही दिखाई देता है कि हिन्दुस्तान की राज्यव्यवस्था की योजना केवल एक ही लक्ष की पूर्ति करने के लिये बनाई हुई मालूम होती है और वह यह कि हिन्दुस्तान में विलायती व्यापार की हमेशा उन्नति ही होती रहे, और उसको किसी भी प्रकार से धक्का न लगने पावे। अच्छा होता यदि नमक से प्रारंभ करने के बदले में उससे सरल डाक महसूल से शुरू करते। बहुत ही कम लोगों ने इस बात को हल करने का प्रयत्न किया होगा कि क्यों पोस्टकार्ड का मूल्य १ पैसे से २ पैसे, फिर ३ पैसे, तक बढ़ाया गया है ? आज कल कहीं भी पोस्टकार्ड भेजने के पहिले लोग टाल-मटोल किया करते हैं। क्यों ? क्योंकि उनकी आमदनी ही इतनी कम होती है कि तीन पैसे भी अखर जाते हैं। अंग्रेजी की एक कहावत के अनुसार (No news is good news) कि जब कोई खबर ही नहीं भेजी है तो हाल-हवाल ठीक ही होगा, यह सोच कर लोग चुप बैठ रहते हैं।

वास्तव में पोस्टकार्ड ही सबसे सस्ता जरिया है जिससे कि गरीब लोग अपने दूर रहने वाले कुटुंबियों का हाल-चाल जान सकते हैं या उनको भेज सकते हैं। परंतु बहुतों को पोस्टकार्ड खरीदने के बराबर ही कठिन है उसे लिखना। कृष्णा नदी के किनारे के एक जिले में, जिसके कि एक हजार गावों में १० लाख आदमी रहते हैं, केवल ४० पोस्ट आफिस

हैं (परंतु ८०० ताड़ी की दूकाने हैं) चूंकी यहां कि ९३ फी सदी जनता निरक्षर है इसलिये उसे किसी खतनवीस से अपना पोस्टकार्ड लिखवाना पड़ता है, और उसके लिये उसे मीलों दूर जाना पड़ता है, उसके बाद डाक के बंबे में छोड़ने के लिये उतने ही मील फिर पैदल रगड़ना पड़ता है। सोचने की बात है कि बेचारे को अपने रिश्तेदारों को अपना कुशल समाचार भेजने के लिये कितनी कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं। लेकिन भारतीय सरकार ने गरीब देहातियों की इन कठिनाइयों की ओर ध्यान नहीं दिया। पहिले पहल सरकार ने पोस्टकार्ड की कीमत १०० फी सदी बढ़ाई, फिर २०० फी सदी बढ़ाई। इसके लिये आज तक अनेक बार केन्द्रीय धारा सभा से प्रतिनिधि मंडल भेजे गये परंतु उनकी विनतियां व्यर्थ ही गईं। केन्द्रीय धारा सभा के अनेक बार पोस्टकार्ड का दर घटाने पर भी गवर्नर जनरल ने अपने विशेष अधिकार से पुराने ही दर को तसदीक किया। अब इसके साथ हम इस बात की तुलना करें कि अमीरों के लिये सरकार ने क्या किया? बैंक के चेकों और हुंडियों पर लगाने वाले टिकट के कर को हटा दिया। इसका नियम यह था कि प्रत्येक चेक पर एक आने का टिकट लगना चाहिये चाहे वह कितने भी रकम का हो। इस कर को हटा देने से किसको लाभ हुआ? अर्थात् केवल अमीरों ही को क्योंकि वेही विशेष मात्रा में चेकों का उपयोग करते हैं। बड़ीब-ड़ी व्यापारी फर्में एक दिन में हज़ारों की संख्या में चेकों और हुंडियों का उपयोग करती हैं। मान लीजिये कि एक बड़ी फर्म एक हजार चेक और हुंडियां रोजाना इस्तेमाल करती है। इसके मानी यह हुए कि १००० आने या ६८ रु० ८ आने प्रति दिन उसको अब लाभ होता है। जो कि एक महीने में १, ५००

रु० और साल भर में १८,००० होते हैं। १८,००० रु० का सालाना मुनाफा हुआ यानी सरकार को उतना ही नुकसान हुआ। परंतु सरकार अपने नुकसान की भरपाई पोस्टकार्ड से कर लेती है। जिसका कि बोझ बेचारे गरीबों को ही सहन करना पड़ता है। इस प्रकार केवल इसी मद से यहां के अंग्रेज रहिवासियों को कितना लाभ होता है इसका अंदाजा सिर्फ सोचा ही जा सकता है। वास्तव में यहां के अंग्रेज सिर्फ दो ही करों के खिलाफ रहते हैं एक तो स्टाम्प ड्यूटी और दूसरा इनकमटैक्स, और भाग्यवश वे एक में सफल हुए हैं।

—:०:—

बैंक और बीमा कंपनियां

साधारण जनता यही समझती है कि अंग्रेज अफसरान और पुलिस सुपरिन्टेनडेन्ट ही मिल कर हिन्दुस्तान का शासन करते हैं। वास्तव में ये लोग भले होते हैं और यद्यपि दिखाई यही देता है कि राज्य-प्रबंध की बागडोर इन्हीं के हाथों है परंतु अधिक से अधिक ये किसी को २-३ बरसों के लिये जेल में भेजने के बजाय और कुछ नहीं कर सकते। परंतु व्यापारी, बैंकर और बीमा एजेन्ट ये लोग यदि चाहें तो आपकी जिन्दगी बर्बाद कर सकते हैं। व्यापारियों की चोटी पूरी तौर से बैंकों के हाथ में रहती है। सर बेसिल ब्लेकेट (पुराने अर्थ मंत्री) ने कहा था कि "इंपीरियल बैंक बैंकों की बैंक है और छोटी-छोटी बैंको को मदद करती रहेगी।" जमा से अधिक निकालने के संबंध में इंपीरियल बैंक देशी व्यापारी संस्थाओं को कम से कम ही सहायता देती रही है। एक समय एक बैंक स्थापित की गई जिसके कि व्यवस्थापक डा० पट्टाभि सीतारामइया थे। इस बैंक को २५,००० रु० की आवश्यकता थी और इस रकम का वे इंपीरियल बैंक से ओवरड्राफ्ट (जमा से ज्यादा रकम) चाहते थे। इस ओवरड्राफ्ट की जमानत के लिये करीब आठ लाख के प्रोनोटों की आनुसंगिक जमानत और फिर हर एक डाइरेक्टर व्यक्तिशः अलग-अलग और शामिलशुदा जमानत, और इतना होते हुए भी बैंक का एक प्रोनोट इतनी जमानतें होने पर भी इंपीरिल बैंक ने इस प्रस्ताव पर ध्यान न दिया। अनेक बार प्रयत्न किये गये परंतु इतनी छोटी सी सुविधा भी न दी गई।

यह कहा जाता है कि बैंकों और बीमा कंपनियों द्वारा १०० करोड़ रुपयों का सालाना नुकसान हिन्दुस्तान को भोगना पड़ता है (विलायती कपड़ों से ७२ करोड़ रुपया ही बाहर जाता है) यदि एक अंग्रेज, अपरिचित ही क्यों न हो, विलायत से हिन्दुस्तान आने वाले माल की जहाजी बिल्टी पेश करता है तो तुरंत उसे हिन्दुस्तान अंग्रेजी बैंकों से ओवरड्राफ्ट मिल जाता है, परंतु मद्रास प्रांत की सहकारी योजना (Co-operative movement) को जिसके पीछे १७००० अमरियाद दायित्व की सहकारी संस्थाएं हैं और जिनकी १००० करोड़ रुपये की मिलकियत की जमानत हो सकती है, उनको बड़ी मुश्किल से ५.४ लाख जमा से ज्यादा लेने का अधिकार दिया जाता है। गो कि इंपीरियल बैंक का यह नियम है कि कम मुद्दत के कर्ज को १२ महीनों का समय दिया जाय, तिस पर भी इंपीरियल बैंक इन छोटे-छोटे बैंकों को हमेशा रुपयों के लिये कोंचा ही करता है। कम मुद्दती कर्जे के जमानत के लिये यह नियम था कि जमा से अधिक लिये हुए रक़म की जमानत बैंकों के कम मुद्दती कर्जों से पूरित होना चाहिये; परंतु अब यह नियम हो गया है कि इस प्रकार आनुसंगिक जमानतें (Collateral Securities) सहकारी प्रोनोटों के बजाय सरकारी बान्डों से पूरित रहना चाहिये। देशी बैंकरों को तो इतनी कड़ाई से द्रव्य दिया जाता है परंतु यूरोपीय फर्मों को वही इंपीरियल बैंक कितने अधिक मात्रा में सुविधाएँ देता है। मद्रास के माउन्ट रोड के यूरोपीय फर्मों को ९ से लेकर १२० लाख तक इंपीरियल बैंक जमा से अधिक द्रव्य देता है। यह कहना व्यर्थ है कि मद्रास के माउन्ट रोड की फर्में, या बंबई के हार्नबी रोड की,

या कलकत्ते की चौरंगी की या लाहोर के माल की फर्में, इन किसी भी प्रान्त की अमरियाद दायित्व की हजारों सहकारी संस्थाओं से अच्छी जमानत दे सकती हैं।

यह तो हुआ बैंकों का आपस में सहकार्य, अब हम व्यापार और उद्योग धंदो में बैंकों के सहकार्य को जांच करें। यह सभी अच्छी तरह से जानते हैं कि आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेज बैंकों से द्रव्य लेने के कारण अनेक मिलों को बहुत कष्ट और दुख सहने पड़े हैं। चित्ती-वालसा जूट मिल को इंपीरियल बैंक ने १३½ लाख रुपये कर्ज दिये थे। उनसे सात दिनों के अंदर रुपये मांगे गये लेकिन मिल मालिक उसे मोहलत के अंदर न दे सके। इस पर मद्रास हाईकोर्ट ने हुक्म दिया कि आधे घंटे के अंदर मिल ने अपना कारबार समेट लेना चाहिये। इस मिल को खुले लीलाम में कलकत्ते की एक फर्म मेक्लि-आड एन्ड कं० (?) ने खरीद लिया। मद्रास की सरकार ने इंडस्ट्रीज एक्ट के अनुसार राजमहेन्द्री के कर्नाटक मिल्स को ४½ लाख रुपये कर्ज दिये थे; परंतु सरकार ने भी कर्नाटक मिल्स से बैंकों जैसा ही व्यव-हार किया। एक्ट के अनुसार सरकार को अधिकार था कि मिल को अपने अधिकार में चलावे, या उसको बिकवा डाले, या उसके चलाने का अधिकार किसी को भी सुपुर्द करे। जब कि यह खबर बड़ी जोरों से फैली की सरकार एक हिन्दुस्तानी दलाल द्वारा एक यूरोपीय फर्म के हांथ मिल को सुपुर्द करना चाहती है, तो मद्रास की धारा सभा में बड़ा धूम मचाया गया जिसका नतीजा कहीं जाकर यह हुआ कि एक सम्मिलित पूंजी वाली कंपनी स्थापित होकर उसने मिल खरीद ली। लेकिन इसी बीच एक रिणदाता ने जिसका कि ४०,००० रु० मिल

पर कर्ज था मद्रास हाईकोर्ट से पांच मिनटों में मिल को कारबार समेटने का हुक्म दिलवा दिया। परंतु समाधान की बात है कि अंत में अच्छे विचारों ने ज़ोर पकड़ा जिसके परिणाम स्वरूप यह मिल फिर चालू हुई। यही दशा वेज़वाड़ा के कपड़े के मिल की हुई जिसमें कि लाखों रुपयों की पूंजी लगी हुई थी; पर थोड़े से बैंक के कर्ज के उसे अपना कारबार १९२९ में समेटना ही पड़ा। इस प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। वास्तव में बात यह है कि अंग्रेजी बैंक या दूसरे बैंक जो कि आधे सरकारी होते हैं, यह सोचते हैं कि उनका काम देश के उद्योगधंदो की उन्नति के लिये आर्थिक सहायता करना नहीं है बल्कि उनका प्रथम और एकमेव कर्तव्य है निर्यात होने वाली वस्तुओं की यातायात को आर्थिक सहायता करना। यह बात मान्य है है कि इंपीरियल बैंक नियमानुसार ६ महीने से अधिक समय के लिये कम मुद्दती कर्ज नहीं दे सकता। परंतु यह कम मुद्दती कर्ज व्यापारी के लिये ही लाभदायक होते हैं न कि उद्योगधंदो के लिये।

यह भी एक आश्चर्य ही की बात है कि हिन्दुस्तान में जितनी निर्यात व्यापार करने वाली फर्में हैं वे अधिकतर यूरोपीय हैं, जैसे वालकर्ट, ब्रदर्स, रैली ब्रदर्स इत्यादि; और यही लोग विनिमय बैंकों से आर्थिक सहायता प्राप्त कर सकते हैं, और हिन्दुस्तानी व्यापारी इन बैंकों से समान सुविधाएं नहीं प्राप्त कर सकते। इतने पर भी अगर कोई आगे बढ़ता ही है तो विलायत में उसे अनेक कष्ट सहन करने पड़ते हैं क्योंकि वहां बैंक और अदायगी (Clearing houses) वाले प्रत्यक्ष हिन्दुस्तानी व्यापारी से संबंध नहीं रखते। इस प्रकार बैंकों के द्वारा हिन्दुस्तान के व्यापार और उद्यम को कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं

क्योंकि ये बैंक वास्तव में यूरोपीय व्यवसाय और व्यवसाइयों को ही सहायता करना अपना कर्तव्य समझते हैं। इतना ही नहीं बल्कि ये बैंक जब उत्पन्न पर कर्ज देते हैं तो इस बात पर ज़ोर देते हैं कि उसका बीमा किया जाय। और अभी तक इस प्रकार का बीमा विदेशी कंपनियों में ही कराना पड़ता था क्योंकि इन बैंकों के मुफस्सिल की शाखाओं के एजेन्ट ही बीमा कंपनी के भी एजेन्ट रहते थे। अब हमने इस बैंक व्यवसाय की जबरदस्ती और पक्षपात को हटाना शुरू कर दिया है। हम फिर 'यंग इन्डिया' में प्रकाशित हुए लेखों में से उद्धृत करते हैं।

"बैंक व्यवसाय में भी यूरोपीय लोगों का इतना आगे बढ़ने का कारण उनका शासक होना ही है। अंग्रेजों का यहां सिक्का जमने के पहिले भी बैंक व्यवसाय अच्छा चालू था। लेकिन जैसे-जैसे कंपनी का राज्य और अधिकार बढ़ता गया, देश के अंदर और बाहर का लगभग सारा व्यापार कंपनी के नौकरों के हांथ में चला गया। इसलिये देश के व्यापारियों के साथ-साथ बैंक-व्यवसायी भी मारे गये। इस कारण विदेशी बैंक-व्यवसाइयों की खूब ही बनी क्योंकि उनसे होड़ करने के लिये देश में उन्हीं-उन्हीं के अतिरिक्त और कोई न था। यही नहीं कि विदेशी बैंक व्यवसाइयों ने देशी व्यवसाइयों का रोज़गार मार कर अपना जमाया, बल्कि आगे भी देशी व्यापार और उद्यम की उन्नति के मार्ग में ये रोड़े ही अटकाये हैं। प्रारंभ से ही इनकी यही नीति रही है कि देशी व्यापार को कम से कम ही सहायता दी जाय, और यही इनकी नीति आज तक भी चली आ रही है। इस संबंध में हम कुछ उदाहरण देते हैं।"

"इंडस्ट्रिअल कमीशन के सामने अपनी गवाही देते समय लाला हरकिशन लाल ने कहा कि एक ऐसा षड़यंत्र रचा गया था, जिसमें कि अफ़सरों के साथ और लोग भी शामिल थे, जिनका कि उद्देश्य था पंजाब के बैंक व्यवसाय को चौपट करना और इस उद्देश्य की पूर्ति में उन्होंने कोई काम बाकी न रक्खा। ये अगर इस तरह पेश न आते तो पंजाब प्रांत के साथ-साथ देश का भी बहुत कल्याण होता ....."

इसी बयान में आप आगे कहते हैं: —

"मैं यह भी जानता हूँ कि एक यूरोपीय मनुष्य ने एक एंग्लो इंडियन बैंक से कर्जा देने के लिये प्रस्ताव किया। उससे, पहिले इस बात की जांच की गई कि इस कर्जे से कोई हिन्दुस्तानी या कोई बैंक को किसी भी तरह में, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से लाभ तो नहीं होने वाला है? इसके बाद उससे कहा गया कि यदि तुम ऊपर दी हुई बात का वादा कर सकते हो तब तो तुम्हें कर्जा दिया जा सकता है वरना नहीं।"

"यद्यपि ये घटनायें १९२१ के पहिले की हैं तिस पर भी परिस्थिति आज भी वैसी ही है। केन्दीय बैंक व्यवसाय जांच कमेटी (Central Banking Enqniry Committee) के सामने दिये हुए महत्वपूर्ण बयान भी यही बतलाते हैं कि विदेशी विनिमय बैंक अनेक प्रकार से राष्ट्रीय व्यापारियों के विरुद्ध पक्षपात करते हैं। कमेटी के सामने भी हिन्दुस्तानी व्यापारियों, जिनको कि कमेटी के सामने बयान देने के लिये बुलाया गया था, विनिमय बैंकों की खास शिकायतें भी की। इस बात पर तो सभी एकमत थे कि आयात निर्यात व्यापार को आर्थिक सहायता देने के बारे में विनिमय बैंक हिन्दुस्तानी और यूरोपीय लोगों

में बहुत भेद भाव करते हैं। लगभग प्रत्येक व्यापारी-समिति ने, जो कि कमेटी के सामने आई थी, यही दोषारोपण बैंकों पर किया।

"और भी दोषारोपण किये गये थे। उदाहरणार्थ, यह कहा गया कि विदेशों में जब हिन्दुस्तानी फर्मों का परिचय विनिमय बैंकों से पूछा गया है तो इन्होंने अक्सर गोल-मोल परिचय देकर हिन्दुस्तानियों के प्रति उदासीनता प्रकट की है, परंतु जब उनसे कम हैसियत की यूरोपीय फर्मों के बारे में पूंछा गया तो उन्होंने अच्छा परिचय दिया है। अवश्य ही इस तरह का व्यवहार होने के कारण विदेशी बाजारों में यूरोपीय फर्मों को बेजा सुविधा मिलती है। और हिन्दुस्तानी फर्म विनिमय बैंकों से कर्जा मांगती हैं तो ये इस बात पर जोर देते हैं कि अपने आयव्यय का लेखा (Balance Sheet) हम जिनको कहें उनसे हिसाब जंचवा कर पेश करें। इतना ही नहीं बल्कि वे इस बात पर भी हमेशा जोर देते हैं कि हिन्दुस्तानी फर्मों ने अपने माल का बीमा कराना चाहिये और वह भी ऐसी कंपनियों में जिनको कि ये आर्थिक सहायता करते हैं।

इतना होने पर भी विनिमय बैङ्कों को उस व्यापार में एकाधिकार दिया गया है। इंपीरियल बैङ्क को विनिमय व्यापार से वंचित रखने का कारण यही था कि वह विनिमय बैङ्कों से उनका कुछ न कुछ व्यापार छीन ही लेता; परंतु सम्मिलित पूंजी के देशी बैङ्कों के साथ उसे होड़ करने दिया जाता है, और आश्चर्य की बात तो यह है कि वह बैङ्कों का बैङ्क है जो कि सरकारी और अर्ध सरकारी संस्थाओं ने जमा किये हुए द्रव्य ही से अधिकतर व्यापार करता है।

"सरकार की कर्ज लेने की नीति ने और इंपीरियल बैङ्क को देश

भर में शाखाएं स्थापित करने में दी जाने वाली सहायता के कारण हिन्दुस्तानी बैङ्क व्यवसाय को, जो कि बड़े-बड़े महाजनों आदि के हाथ में था, चौपट कर दिया है।"

विद्युतशक्ति (Electricity)

जब विलायत में बेकारी बढ़ती है तब वहां के कारखानेदार और मिनिस्टर अपने देश के चीज़ों की खपत बढ़ाने के लिये नई नई जगहों की और बाज़ारों की खोज में संसार भर में सफर करते हैं। लेकिन अब ऐसी कोई जगह न रही जहां इनका माल न पहुँचता हो, और न ऐसी कोई चीज ही रह गई है जिसको चले काफी दिन न हुए हों। इसलिये अब उन्होंने विद्युतशक्ति के उत्पादनार्थ लगने वाली मशीनें और अन्य आवश्यक सामग्री का प्रचार बहुत जोरो में जारी किया है। हमारी सरकार भी अब विशेष दक्षता से प्रत्येक शहर में टेलीफोन लगाने, और शहरों शहरों में टेलीफोन संबंध स्थापित करने का प्रयत्न कर रही है। लेकिन इसके अलावा सरकार ने १९२६ में हर एक म्युनिसिपैलिटी को एक गश्ती चिट्ठी भेज कर प्रदर्शित किया कि वह म्युनिसिपैलिटियों को उनके शहरों में बिजली की बत्तियां लगवाने वगैरह के काम में सहायता देगी। थोड़े दिनों तक तो वह काम चला लेकिन दो वरसों के अंदर ही सरकार के नीति में एकदम परिवर्तन हो गया, मद्रास प्रांत के कोकोनाडा, राजमहेन्द्री, बेजवाडा, कर्नोल और कोनूर शहरों की म्युनिसिपैलिटियों ने जब बिजली के ठेके हिन्दुस्तानी फर्मों को दिये, तब तो सरकार चकराई क्योंकि हिन्दुस्तानी फर्में अपना सामान जर्मन और अमेरिकन कारखानेदारों से खरीदते थे। सरकार ने देखा कि इससे तो विलायती कारखानेदारों को नुकसान हो रहा है, इसलिये उसने स्वायत्त

शासन विभाग (Local Self Government Department) से एक आज्ञापत्र चालू कराया जिसमें यह था कि कोई भी म्युनिसिपैलिटी ने विजली की मशीन का टेन्डर तब तक मान्य न करना चाहिये जब तक विजली के सरकारी इन्सपेक्टर की उसके लिये सिफारिश न हो। यह इन्सपेक्टर तब अंग्रज ही था अब भी अंग्रेज ही है। ऐसी परिस्थिती में हिन्दुस्तानी फर्मों को कितने ठेके मिले होंगे यह सब समझ सकते हैं।

इस प्रकार सरकार म्युनिसिपैलिटियों के स्वाभाविक और न्याय अधिकार से उन्हें वंचित करती हैं जिसमें कि सरकार का काफी हस्तक्षेप म्युनिसिपैलिटियों के ठेकेदारों का निर्णय करने में रहे। सरकार जो कि एक समय विजली लगाने की प्रारंभिक योजना तैयार होने के पहिले ही लाखों रुपये कर्ज देकर दो तीन साल तक व्याज वसूल किया करती थी, वहीं वाद को रुपये देने से इंकार करने लगी, जब तक कि उसके मन के अनुसार ठेके नहीं दिये जाते थे अर्थात जब तक सरकार को यह आश्वासन न मिलता था कि विलायती माल ही उपयोग में लाया जायगा। यह तो हुई विजली वाजी की वास्तविक दशा परंतु मद्रास सरकार के इस नीति की कलकत्ते के एलेक्ट्रिक इंजीनिअर्स ने एक मीटिंग (१९३०) में इतनी प्रशंसा की कि मद्रास सरकार को उनके इस अच्छे कार्य पर बधाई की एक तार भी भेजी।

कलकत्ते के कैलकटा एलेक्ट्रिक सप्लाई कारपोरेशन ने अपने नियमावली में (Articles of Association) ऐसी तबदीली की है जिसके अनुसार ब्रिटिश नरगरिकों के हाथ में ही उसका नियंत्रण रहेगा; और यह दक्षता बंगाल सरकार के दबाव के कारण ही ली गई।

सेना विभाग (Army)

अब हम हिन्दुस्तान के सैनिक विभाग की ओर आते हैं। अन्य पाश्चात्य देशों की तरह ब्रिटिश भी संगठन-शक्ति में प्रसिद्ध हैं। पौर्वात्य देशों के प्रति यह अक्सर कहा जाता है कि उनमें इसी शक्ति की कमी है। परंतु संगठन-शक्ति की यथार्थ कल्पना और अर्थ बहुत कम ही लोग समझते हैं। शांतिकाल का संगठन उद्यमवाद (Industrialism) होता है और युद्धकाल का संगठन होता है सैनिकवाद। पिछले पन्नों में तो हमने देखा ही है कि उद्यमवाद की कक्षा में किस प्रकार विलायत अपने व्यापारिक और औद्योगिक हितों की रक्षा करता है। सैनिकवाद में भी यही कहा जायगा कि इस विभाग के संबंध में भी उसकी नीति ब्रिटिश साम्राज्य का संरक्षण करना ही है। हिन्दुस्तान में ६१,००० गोरे सिपाही हैं जिनकी कि भरती १७ और २४ की आयु के समय हुई है। इनको सात साल तक हिन्दुस्तान के खर्चे से ट्रेनिंग दी जाती है और जब कि ये पूरे सिपाही होकर सैनिक की हैसियत प्राप्त कर लेते हैं तब इनके ऊपर हिन्दुस्तान का कोई अधिकार नहीं रहता। वास्तव में ये मुक्त कर दिये जाते हैं और इसके बाद यह इनके ऊपर छोड़ दिया जाता है कि चाहे ये हिन्दुस्तान के सेना विभाग में भर्ती हों, पुलिस विभाग में हों या और किसी भी विभाग में हों, या विलायत ही लौट जाय। इस प्रकार इनके लिये किया हुआ खर्च सब व्यर्थ ही चला जाता है। इस अंधेर का यहीं अंत नहीं होता। इनमें से हरएक आदमी की हिन्दुस्तान को २८ पौंड १४ शि० मूल्य के अनुसार खर्ा-

दना पड़ता था। इस तरह ६१,००० सैनिकों के लिये हिन्दुस्तान विलायत को लगभग १५ लाख पौंड की रकम देता था। और यही नहीं कि यह रकम एक ही बार देनी पड़ी हो लेकिन चूंकि हर साल विलायत में गोरे सैनिकों की हिन्दुस्तान के लिये भरती की जाती थी इसलिये इस रकम का एक हिस्सा हर साल भुगतना पड़ता था। इस प्रकार हिन्दुस्तान की शोचनीय स्थिति है और इसी तरह हिन्दुस्तान का शोषण होता है।

जिस विभाग का मुख्य उद्देश्य है साम्राज्य को मजबूत रखना उस विभाग में अफसरी हिन्दुस्तानियों को न दी जाय तो आश्चर्य की वात नहीं है। हिन्दुस्तानियों को तोपखाने और इंजीनिअरिंग विभागों में लिया ही नहीं जाता। १९२९ में हिन्दुस्तान के ३२०० फौजी अफसरों में सिर्फ ९१ अफसर हिन्दुन्तानी थे। स्कीन कमेटी की सिफारशों को सरकार ने किस तरह उलट दिया हम सभी जानते हैं। और यह भी जानते हैं कि सेना का पुनर्संगठन करने के वारे में सैनिक विभाग के खर्चे पर हिन्दुस्तानी मंत्री का नेत्रित्व और ब्रिटिश फौज को यहां से हटाने के वारे में अंग्रेजों की क्या राय हो सकती है। इस संबंध में यह ध्यान में रखने योग्य वात है कि राजनैतिक कारणों के अतिरिक्त आर्थिक कारण भी कम नहीं है जिनको कि अंग्रेज कभी भी नहीं भूल सकते।

स्टोर्स तथा अन्य बातें

(Stores & Miscellaneous Matters)

हिन्दुस्तान का आर्थिक शोषण के बारे में सब से अधिक धांधली बाजी स्टोर्स विभाग में होती है। यह विभाग विलायत में रक्खा जाता है। अनेक बार केन्द्रीय असेंबली में स्टोर्स के खरीद का प्रश्न उठाया गया लेकिन कोई मतलब न हासिल हुआ। परंतु १९२९ में सरकार ने बनाये हुए इस संबंध के नियम समाधान कारक है जिनका कि सारांश यह है कि पहिले हिन्दुस्तान की बनी चीजें खरीदना चाहिये। साथ ही एक यह भी नियम है कि यहां की चीजें उतनी अच्छी होनी चाहिये जितनी कि विदेशी होती हैं। एक और बात समाधान कारक है कि स्टोर्स के लिये पेश किये जाने वाले टेन्डर रुपयों में होना चाहिंये। १९२६ में ये नियम बने परंतु १९३७ में ही पहिली बार सेल अधिकारियों ने मसहरियां कानपूर के फर्म से और छूरे दयालबाग से खरीदे हैं।

अन्य बातें

और भी ऐसी ही बातें हैं जिनसे मालूम होता है कि ब्रिटेन की हिन्दुस्तान में यही नीति रही है कि अंग्रेज व्यापारियों, बागवानो, कारखानेदारों आदि को विशेष सुविधाएं प्राप्त रहें। कांग्रेस के इतिहास में बताया गया है कि किस बेदर्दी के साथ चंपारन के यूरोपीय बागवान ६४ तरह के कर वसूल करते थे। बंगाल में इन बागवानों की ज्यादती के कारण ही १८५९ में भयानक गड़बड़ी मच गई थी।

जब इनके साम्राज्य शाही में गड़बड़ी होने का सवाल होता है तो सरकार यह नहीं देखती कि गड़बड़ी करने वाला कौन है चाहे वह अंग्रेज ही क्यों न हो उसे भी कड़ी सजा देने में नहीं चूकती। भोसला के मृत्यु के बाद जब नागपूर का किला अंग्रेजों ने घेर लिया था और मध्य देश को भी अपने राज्य में मिला लिया था, उस समय बंगाल से एक कार्ययुक्त अफसर, मेजर आउसले, भोसला के विधवा रानियों के पास अंग्रेजों से पत्र व्यवहार शुरू कराने के लिये जा रहा था। परंतु वह बीच ही में पकड़ा गया और बाद को इस शर्त पर छोड़ा गया कि वह नागपूर प्रांत को तत्काल छोड़ देगा। उसी प्रकार बंगाल में भी रेवरेन्ड मि० लांग को कलकत्ते के हाईकोर्ट ने दंड और शिक्षा भी दी क्योंकि उन्होंने एक ऐसी बंगाली पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद किया था जिसमें कि चाय के अंग्रेज बागवालों की दगाबाज़ी का वर्णन था।

कुछ ही दिन पहिले तक चाय की खेती या बागवानी यूरोपीय लोगों के एकमेव अधिकार में थी। प्रारंभ में जब कि आसाम और कुमायू में चाय की खेती के प्रयोग किये गये थे सरकार ही ने सब खर्चा उठाया था। चीन से बीज और आदमी भी बुलाकर प्रयोग किये गये थे—जिसके कि खर्च का बोझ हिन्दुस्तानी जनता ही पर पड़ा था—परंतु प्रयोग जब सफल हुए तो इस व्यापार को अपने जात भाइयों को बहाल कर दिया; इतना ही नहीं परंतु उसको ऐसी सुविधाएं दी गई कि चाय के बगीचों पर काम करने वाला मजदूर उनका गुलाम बना दिया गया। आसाम के लिये तो एक एक्ट भी बनाया गया जिसके अनुसार बागवान मजदूरों को कैद कर सकते थे।

बंगाल का जूट व्यवसाय भी एक तरह से यूरोपीय लोगों के एका-

धिकार ही में रहा है। १६१५ और १९२६ के बीच ऐसा कहा जाता है कि उनका मुनाफा कुल ३० करोड़ रुपया हुआ था। जूट व्यवसाय का ऐसा प्रबंध रक्खा गया है कि इसमें लगने वाले कच्चे माल से लेकर कोयले, बीमा, दलाली आदि सब व्यवहार यूरोपियनों ही के हाथ में है।

——

१६३५ के विधान के व्यापारी बचाव

हिन्दुस्तान पर विलायत का प्रभुत्व ही उनके इस देश के व्यापार की जड़ है, और इस प्रभुत्व ही के द्वारा उन्होंने (१) रेल के किरायों के दर, (२) चलन, (३) विनिमय और (४) आतात निर्यात कर—इन चार मुख्य बातों पर अपना नियंत्रण रक्खा है। पिछले परिच्छेदों में पहिली तीन बातों का वर्णन दिया है और अब हमें केवल आयातनिर्यात कर के प्रश्न को ही जांच करना बाकी है। १९१९ के मान्टफोर्ड रिफार्म्स के अंतर्गत दिये हुए आर्थिक स्वातंत्र के बारे में बड़ी-बड़ी प्रशंसात्मक बातें कही गई थी। १९१९ के एक्ट में दिया गया था कि जब केंद्रीय धारासभा और केंद्रीय सरकार सहमत हों तब वे आयात निर्यात कर लगा सकते थे, बशर्तें कि ऐसे कर ब्रिटिश साम्राज्य के हित में बाधक न हों। इस छोटी सी चीज को नरम दल वालों (माडरेटों) ने इतनी बड़ी समझी कि वे यही कहने लगे कि हिन्दुस्तान अब साम्राज्यांतर्गत स्वराज्य की ओर बढ़ने लगा। परंतु सत्य क्या है यह १६३५ के एक्ट से मालूम हो सकता है।

१—व्यापार में समान अधिकार

अब हमें हिन्दुस्तान में अंग्रेजों के व्यापारी अधिकारों को जानने के लिए १९३५ के गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट की योजनाओं पर ध्यान देना चाहिए। परंतु हमें यह जानना आवश्यक है कि १९३५ के

एक्ट के पहिले व्यापारी अधिकारों की परिस्थिती क्या थी इस संबंध में श्रीयुत गगनविहारी एल० मेहता, M. A. अप्रैल १९३१ के माडर्न रिव्यू में प्रकाशित हुए लेख का सारांश इस प्रकार।

"हिन्दुस्तान में ब्रिटिश और हिन्दुस्तानियों को समान व्यापारी अधिकार होना चाहिये, इस मांग को पेश करने के पहिले उनकी यह मांग थी कि भेद भाव के कानूनों से हम (ब्रिटिशों को) को कानूनी बचाव मिलना चाहिये। अब हमें यह जानना चाहिये कि यह कानूनी बचाव कब से प्रारंभ हुआ। इस हलचल और विरोध का उगम हुआ Indian Coastal Traffic Bill (समुद्रतटीय जहाजी व्यापार का बिल) से। इसका विरोध भी ब्रिटिश व्यापारियों ने जोर से किया और इसी समय से उन्होंने अर्थिक भेद-भाव से कानूनी बचाव के लिये हलचल शुरू की। हिन्दुस्तान और सीलोन के एसोसिएटेड व्यापारिक समिति ने तो यह भी कहा कि हिन्दुस्तान की धारा सभा को किसी प्रकार का भेद-भाव करने का अधिकार न होना चाहिये।

नेहरू रिपोर्ट ने इस प्रश्न पर यह प्रदर्शित किया कि "हमारी समझ में नहीं आता कि, जिन लोगों ने हजारों रुपये हिन्दुस्तान में व्यापार में लगाये हैं, क्यों घबड़ाते हैं। इस बात को तो सोचना भी मुश्किल है कि बाकायदे व्यापार करने वाली किसी भी जाति के विरुद्ध भेद-भाव के कानून बनाये जा सकते हैं।"

उसके बाद उन्होंने १९३० में अपनी मांग को जरा नरमी दी। उनका कहना था कि हिन्दुस्तान में व्यापार करने वाले ब्रिटिश और हिन्दुस्तानी व्यापारियों में एक व्यापारिक संधि होना चाहिये जिसके अनुसार दोनों को समान अधिकार मिले। साथ यह भी शर्त थी कि

यह संधि होने के बाद ही केंद्रीय सरकार में हिन्दुस्तानियों को विशेष अधिकार मिलें। अब हम मांग की समालोचना करें। ब्रिटिश व्यापारी यह चाहते थे कि नये विधान में एक ऐसी योजना अवश्य चाहिये जिससे भेद-भाव से कानूनी बचाव मिले। आश्चर्य की बात है कि केवल समुद्रतटीय जहाजी व्यापार को संरक्षण देने वाले बिल के अतिरिक्त और कोई उदाहरण 'भेद-भाव के कानून' या 'आर्थिक भेद-भाव' दिखाने के लिये न मिला, और न वे ठीक-ठीक यही व्यक्त कर सके कि किस तरह का बचाव वे चाहते हैं।

१९३० में पहिली लंडन कानफरेन्स ने एक मसौदा मान्य किया जो कि इस प्रकार है—केवल मि० जिना इसके विरुद्ध थे:—

"यह तत्व आमतौर से मान्य किया गया कि हिन्दुस्तान में व्यापार करने वाली ब्रिटिश व्यापारी, फर्म और कंपनियों में और हिन्दुस्तान के नागरिकों के अधिकारों में भेद-भाव नहीं किया जायगा; और परस्पर वाध्यता के तत्व पर एक योग्य संधि स्थापित होना चाहिये जिसके अनुसार ये अधिकार नियंत्रित होंगे।"

यह भी मान्य किया गया कि फौजदारी मुकदमों के संबंध में यूरोपियनों को पहिले ही के अधिकार रहेंगे।

"अब इस राजीनामे की जांच करें। यह नहीं कि अनुचित भेद-भाव को इस राजीनामे में रोका हो परंतु व्यापारिक अधिकार के संबंध में किसी भी तरह का भेद-भाव न होना चाहिये यह इसका लक्ष था। रेल्वेज में, जेलों में, न्याय-अधिकार में, और अन्य बहुत सी बातों में तो इनकी जाति को हिन्दुस्तानियों से अच्छा वर्ताव दिया जाना चाहिये। संक्षिप्त में राजीनामे का अर्थ इस प्रकार है। इसको पढ़

कर कोई भी यही कहेगा कि यह इतना अनिश्चित है कि बहुत सी बातें भेद-भाव में आ सकती हैं। जैसे यदि सरकारी रेल्वे इस बात पर जोर देती है कि वह देशी खान का कोयला ही इस्तेमाल में लावगी तो यह भी भेद-भाव हो सकता है। यह कहा जाता है कि यह योजना तो इस नीति को प्रदर्शित करती है कि परस्पर बाध्यता के तत्वानुसार संधि होनी चाहिये। पहिली बात तो यह कि जब नीव ही गड़बड़ है तो मकान कैसे बन सकता है। फिर विलायत और हिन्दुस्तान में कैसे परस्पर बाध्यता हो सकती है। विलायत में कुछ थोड़े से रहने वालों का वहां कितना स्वत्व है जिसे कि हिन्दुस्तान में के ब्रिटिश स्वत्व के बराबर ला सकेंगे। हिन्दुस्तानी अपने ही देश में इतने पिछड़े हुए हैं तो फिर वे विलायत जाकर व्यापार के लिये क्या सुविधा मागेंगे। उनको तो यहीं विशेष सुविधाएं मिलने की आवश्यकता है क्यों कि उन्हें काफी आगे बढ़े देशों से अपने ही देश में होड़ करनी पड़ती है। ऐसी परिस्थिति में पारस्परिक-बाध्यता की बात केवल दिखावटी प्रलोभन ही मात्र है।

प्रत्येक राष्ट्र का यह अधिकार है कि वह स्वदेश और विदेश में भेदभाव रख सकता है और व्यापार के कुछ भाग देशी ही लोगों के लिये सुरक्षित रख सकता है। आम तौर से सभी राष्ट्रों की यही नीति है कि कुछ निश्चित अधिकार और सुविधाएं किसी न किसी कारण से अपने स्वदेश ही के लिये सुरक्षित रक्खी जाती हैं अमेरिका के संयुक्त देश में एक शताब्दी से भी अधिक यही नीति रही है कि उसने अपने समुद्रतटीय जहाजी व्यापार को अपने ही नागरिकों के लिये सुरक्षित रक्खा है। जब कभी ऐसा अवसर आता है कि किसी दूसरे राष्ट्र से व्या-

पारी संधि होती है और उसके अंतर्गत जहाजी व्यापार भी आ जाता है तो समुद्रतटीय जहाजी व्यापार को उस संधि से छूट ले ली जाती है। यही नहीं परंतु ऐसे अवसरों पर उनके सीमा के अंदर मछलियां पकड़ना, निश्चित व्यवसाय करना आदि चीजों में परदेशीय लोगों को नहीं घुसने दिया जाता। फ्रान्स, जर्मनी, इटली, डेनमार्क, चिली, रुमानिया आदि सब देशों में विदेशी व्यापारियों के लिये बहुत से बाधात्मक नियम हैं। रूमानिया में ऐसा नियम है कि उस देश में व्यापार करने वाली कंपनीयों की दोतृतिआंश पूंजी रूमानिओं के हाथ में होनी चाहिये, और तीन चतुर्तांश डाइरेक्टर्स रुमानिया के नागरिक होना चाहिये। चीन, यूनान, चिली आदि देशों में ऐसे कानून हैं जिनके कारण विदेशियों को खनिज-उत्खनन की सुविधाएं नहीं प्राप्त हो सकती। १९२३ में प्रान्स ने विदेशियों को वहां जमीन खरीदने की मुमानियत करदी। खास विलायत भी जो कि खुले व्यापार का पुरस्कर्ता है, १८९४ के मर्चेन्ट शिपिंग एक्ट के कारण, एक विदेशी, ब्रिटिश जहाज का मालिक नहीं हो सकता। इस एक्ट के अनुसार ब्रिटिश नागरिक ही ब्रिटिश जहाजों का मालिक हो सकता है। ब्रिटिश कोलंबिया में रेल्वेज, बैंकिंग और बीमा की विदेशी कंपनियों का रजिस्ट्रेशन ही नहीं हो सकता। आस्ट्रेलिया में भी (War Precautions Repeal Act) (1921) के दफा ८ के अनुसार कोई कंपनी, जिसमें एकतृतिआंश से अधिक शेयर विदेशियों के मिलकियत में हो, वहां खनिज व्यापार नहीं कर सकती। संसार के अन्य देश ही नहीं परंतु ब्रिटिश साम्राज्य के देशों में भी ऐसे कानून हैं जो कि आर्थिक भेदभाव अन्य देशों के साथ ही नहीं परंतु साम्राज्यांतर्गत देशों के साथ भी

करते हैं। इसका यहीं अंत नहीं होता। इंपीरियल नेशनैलिटी एक्ट की २६ वीं दफा तो साफ तौर से कहती है कि ब्रिटिश साम्राज्य की कोई भी सरकार साम्राज्य के किसी भी नागरिक से भेदभाव का व्यवहार कर सकती है। इस तरह जो बचाव हिन्दुस्तान में अंग्रेज मांग रहे हैं ठीक उन्हीं मागों के ख़िलाफ़ अपने यहां कानून बना रक्खे हैं।

इस बचाव की मांग का राजनैतिक महत्व भी कम नहीं है। इस प्रश्न के संबंध में ब्रिटिश व्यापारी अपना दरजा एक सा नहीं रखते। कभी तो वे अपने को, दुर्बल, असुरक्षित, अल्प संख्यक जाति में शुमार करते हैं और कभी वे अपने उच्च गोरे-जाति के कारण और इस देश में लगाई हुई पूंजी के कारण झगड़ते हैं। और फिर कभी वे यह भी कहने लगते हैं कि चूंकि हम एक ही साम्राज्य—छत्र के नीचे हैं इसलिये हमें समान अधिकार मिलने चाहिये। इस तरह जब जैसा समय होता है उस प्रकार इनकी बातों का झोंक होता है। सारांश इसका यही है कि वे अपने अधिकार जारी ही रखना चाहते हैं।

व्यापारी संधियों और कानूनी गारन्टी के रूप में अपने विशेपाधिकार चालू रखने की मांग करने का अर्थ हिन्दुस्तान से उसकी स्वतंत्रता मांगना ही होता है। इजिप्त, पर्शिया, चीन, टर्की इन देशों में जहां कि यूरोपियनों के विशेपाधिकार थे, वहां के लोग इनके विरोध में खड़े हुए और तब उनको अपना कारबार उन देशों से समेटना ही पड़ा। उन देशों में शस्त्रों के बल से लिये हुए विशेपाधिकार और हमारे देश में व्यापारी संधियों द्वारा लादे जाने वाले अधिकार एक ही कक्षा में आते हैं। इसलिये चीन के क्यूमिनटांग की पहिली घोषणा यही थी कि जो राष्ट्र अपने खुशी से पुरानी संधियों के अधिकार छोड़ने के लिये तैयार

होगा उससे हम सब से अच्छा वर्ताव रक्खेंगे।

ब्रिटिश व्यापारी जो बचाव और सुरक्षितता हिन्दुस्तान में चाहते हैं वह राष्ट्रीय सम्मान को अपमान कारक है। हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय विधान में ब्रिटिशों को भी वही अधिकार मिलेंगे जो कि परदेशीयों को मिलेंगे। इसलिये यदि वे विशेषाधिकार चाहते हैं तो उनको भविष्य में हिन्दस्तान की धारासभा के नियमों के अनुसार यहां के राष्ट्रीय और नागरिक होना चाहिये।

२—इन्डो-ब्रिटिश व्यापारी करार

१९३५ के एक्ट का मसौदा तैयार होने के भी बहुत पहिले इन्डो-ब्रिटिश व्यापारी करार हो जाना, व्यापारी बचावों (Protection) के इतिहास का एक विचित्र विकास है। सच पूछा जाय तो १९३० के पहिली गोलमेज परिषद ही में इस करार के होने का अंदाजा किया गया था। ब्रिटिश सरकार ने व्हाइट पेपर में की हुई योजनाओं ही ने इस करार को चालना दी और जून, १९३५ में एक्ट पास होने के पहिले ही १०—१—३५ को इस करार पर व्हाइट हाल में, सर बी० एन० मित्रा ने हिन्दुस्तान के हाई कमिश्नर की हैसियत में हिन्दुस्तान की ओर से और सर वाल्टर रन्सिमैन ने ब्रिटिश सरकार की ओर से, हस्ताक्षर किये। सर वाल्टर को पार्लियामेन्ट ने अधिकार दिया था परंतु सर बि० एन० मित्तर को आज्ञा थी गवर्नर जनरल की जिसने कि केन्द्रीय धारा सभा से परामर्श भी न किया था। इन्डो-ब्रिटिश करार परिशिष्ट अ में दिया गया है, जिसके कि पढ़ने से मालूम होता

है कि १९३५ के एक्ट में नियोजित किये हुए व्यापारी बचाव की पूरी नकल ही इसमें पाई जाती है। अर्थात् इसके मानी यह है कि भविष्य में आने वाले प्रस्तावों पर पार्लियामेन्ट में विचार तो हो ही रहा था कि नौकरशाही के दबाव से पहिले ही हिन्दुस्तान पर लाद दिये गये।

३—व्यापारी बचाव

हिन्दुस्तान के आयात-निर्यात नीति का इतिहास और व्यापारी बचाव का (जिनको कि १९३५ के एक्ट में भर दिया गया है) संक्षित वर्णन हो ही गया है। इस एक्ट के अनुसार गवर्नरजनरल को अधिकार है कि वह विलायत से आने वाले माल के विरुद्ध, भेद-भाव और दंड देने वाले किसी भी कार्य को रोक सकता है। अर्थात् केन्द्रीय धारा सभा आयात-निर्यात कर बैठा सकती है बशर्ते कि करके कारण विलायत से आयात होने वाले माल का हिन्दुस्तान में उत्पन्न होने वाले उसी माल से अधिक मूल्य न हो जाय। इसका परिणाम यह हुआ कि जब कभी आयात-निर्यात कर बैठाने के प्रस्ताव पेश होंगे तो विलायत के किसी भी नागरिक को टैरिफ बोर्ड से सुनवाई पाने का अधिकार होगा; और यदि ये कर धारासभा से पास होकर कानून भी बन जाय तब भी विलायत का कोई नागरिक हिन्दुस्तान के फेडरल कोर्ट में मुकदमा दायर करके इस कानून को रद्द करवा सकता है, इस बुनियाद पर कि यह विधान की योजना के विरुद्ध है। इतना ही नहीं बल्कि फेडरल सरकार या प्रांतीय सरकारें किसी भी तरह की शर्तें या आवश्यकताएं पूरी करने के कानून बनावें जैसे कंपनी की

कहां रजिस्ट्री होना चाहिये ?, उसका रजिस्टर्ड आफिस कहां होना चाहिये ?, किस चलन में उसकी पूंजी दर्ज होनी चाहिये ?, या उसके प्रबंधकर्ताओं और भागीदारों के जन्म स्थान, जाति, वंश, भाषा, धर्म, निवास स्थान के संबंध में कौन सी बातें अवश्य होनी चाहिये — अथवा उसके स्टाक और डिबेंचर के मालिक या उसके अफ़सर, नौकर आदि के नियम कुछ भी हों और चाहे कंपनी इस एक्ट के पहिले स्थापित ही क्यों न हो — ये नियम इन पर लागू न हो सकेंगे। और ये कंपनियां भी हिन्दुस्तान के कानून के बावजूद स्थापित किसी भी कंपनी के बराबर सरकार से आर्थिक सहायता और सुविधाएं प्राप्त करने योग्य होंगी। अंत में यह भी दिया है कि विलायत के किसी भी जहाज, उसके मालिक, उसके अफसरों, मल्लाहों, यात्रियों और माल के प्रति भेद-भाव नहीं किया जा सकता। इस प्रकार रेलवे के दर, विनिमय, चलन और आयात-निर्यात कर इनको अपने हाथ में रखकर यहां का सारा व्यापार अपने कब्जे में कर लिया है जिसमें कि हिन्दुस्तानियों से इन्हें किसी तरह की रुकावट न मिल सके।

—:o:—

सारांश

किस प्रकार से ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश लोगों की हिन्दुस्तान के राज्य-शासन के प्रत्येक विभाग में एक ही आर्थिक नीति है इसे इस पुस्तक में दिखाने का प्रयत्न किया गया है। हिन्दुस्तान की सरकार का यह काम है कि वह अपनी शक्ति, अधिकार और प्रभाव का उपयोग करके ब्रिटिश व्यापार और उद्यम को बढ़ाने का काम करती रहे। हिन्दुस्तान का अंग्रेजों को केवल उतना ही उपयोग है जितना कि किसी व्यापारी को बाजार से लाभ होता है।

परंतु अब धीरे-धीरे विलायती माल की खपत कम हो रही है। किस प्रकार विलायत के कोयले का व्यापार गिर रहा है इसका कोयले के परिच्छेद में वर्णन किया गया है। लोहे में भी वही बात हो रही है, क्योंकि अब लोहे की मेहरावों के पुलों के बजाय उन्हें सिमेन्ट-कांक्रीट ही के बनाने की ओर प्रवृत्ति हो रही है। केनाडा में साम्राज्यान्तर्गत रियासत प्राप्त करने में इन्हें सफलता न हुई, इसलिये लंकाशायर के लोग बहुत हताश हुए थे। फिर लंकाशायर के कारखानेदार इस बात पर रो रहे थे कि पिछले कुछ वर्षों में हिन्दुस्तान में लंकाशायर के माल पर आयात-निर्यात कर बढ़ा दिये गये हैं। आस्ट्रेलिया ने भी अपने आयात-निर्यात कर बढ़ा दिये जिनका कि इनके माल की बिक्री पर असर पड़ने लगा। केनाडा का भी रुख ऐसा ही है जिससे कि इनकी आशाओं पर पानी सा फिर गया है। ऐसी परिस्थिति हो जाने के कारण ही विलायत को ऐसा काम करना पड़ा जिस को

वह कभी न करना चाहता था अर्थात् सोविएट रूस से समझौता करना। यह बात बहुत थोड़े ही लोगों को मालूम है कि १९२९ में १५०० ब्रिटिश फर्मों के ८४ प्रतिनिधि जिनकी कुल पूंजी ७०० मिलियन पौंड होती थी, रूस के बाजार का ढंग देखने और वहां व्यापाराना संबंध स्थापित करने गये थे। और इन्हीं प्रतिनिधियों के द्वारा रूस के बाजारों की सुव्यवस्था की प्रशंसा के कारण, विलायत के मजदूर सरकार ने रूस से राजनैतिक संबंध चालू किये। और इसी कारण रूस और विलायत में इतना आंतरिक वैमनस्य होने पर भी एक दूसरे ने अपने राजदूत एक दूसरे के यहां भेजे। इस प्रकार विलायत की बहुत शोचनीय स्थिति हो गई है। उसका व्यापार भी गड़बड़ा गया है। पिछले महायुद्ध में जीत तो अंग्रेजों की हुई परंतु इन्हें क्या मिला? बेकारी। क्योंकि फ्रांस पहिले इनसे इंजिन कोयला, लोहा लिया करता था परंतु महायुद्ध के उपरांत ये चीजें उसे मुफ्त ही मिलने लगीं—यह चीजें लड़ाई के नुकसान के भरपाई के रूप में उसे जर्मनी से मिलती थीं। इस प्रकार यद्यपि जर्मनी हार गया था तब भी वहां के सब लोग जोरों से रात दिन काम में लगे हुए थे क्योंकि उन्हें नुकसान की भरपाई करना था। परंतु विलायत को तो जीत के कारण अपना सराफा हुंडी का बाजार (Money market) ही खो देना पड़ा। चीन, पर्शिया, अफग़ानिस्तान, अरब, ईराक, और इजिप्ट में विलायती चीजों का बाइकाट किया जाता है। चीन में १९०९ से १२ तक ५८७—३ मिलियन गज कपड़ा विलायत से जाता था पर १९३० में उसकी आयात ६९—४ मिलियन गज ही हुई। पेलेस्टीन के बारे में लंडन से आई हुई १२ जुलाई १९३७ की खबर से पता लगा है

कि अरब लोग पेलेस्टीन भंग की आयोजना का मुकाबला ब्रिटिश माल का बाइकाट से देने वाले हैं।

विलायत का हिन्दुस्तान में व्यापार कितना कम हो गया है इसे अंकों द्वारा समझना सरल होगा। १९१३ में विलायत कपड़े की कुल पैदावार का ४० फी सदी और सूत की पैदावार का ६३ फी सदी हिन्दुस्तान को भेजता था, लेकिन १९३१ में ये आंकड़े क्रमशः २० फी सदी और १९.५ फी सदी बाजार अंग्रेजों के हाथ से चला जाना ही लंकाशायर का व्यापार चौपट होने का मुख्य कारण है क्योंकि हिन्दुस्तान ही के लिये मुख्यतः इस तरह का व्यापार निर्मित हुआ था। और इस नुकसान का खप्पर ब्रिटिश सरकार के माथे ही फोड़ा जाता है।

वास्तव में बात यह है कि अंग्रेजों की दशा गंभीर हो गई है और इसी कारण यदि कुछ अंग्रेज राजनीतिज्ञ हिन्दुस्तान को किसी भी तरह का साम्राज्यांतर्गत स्वराज्य देने की राय देते हैं तो इसका कारण यह नहीं है वे हिन्दुस्तान के ऊपर किसी प्रकार उपकार करना चाहते हैं परंतु इसमें उनका उद्देश्य है विलायत के प्रति हिन्दुस्तान की सहानुभूति प्राप्त करना। हिन्दुस्तानी जनता इनके इरादों को जानने लगी है और यही ऊपर की पंक्तियो में दिखाया गया है। वास्तव में इस विषय पर एक अलग ही पुस्तक लिखी जा सकती है। परंतु हमारा उद्देश्य तो केवल रुचि उत्पन्न करना ही है जिसमें कि लोग स्वयं ही अपना समाधान कर लें कि किस गहराई तक हम उनके जाल में जकड़े हुए हैं।

यद्यपि विलायत का प्रभुत्व कपड़े के बारे में हिन्दुस्तान से हट गया

है परंतु वह अब मशीनरी का प्रभुत्व स्थापित कर रहा है। आज कल बिजली का बहुत प्रचार हो रहा है।

पृथ्वी का एक चथुर्थांश भाग ब्रिटिश साम्राज्य के अंदर है और एक-चथुर्तांश आबादी भी साम्राज्य में रहती है। पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली अनेक वस्तुओं में ब्रिटिश साम्राज्य का भाग इस प्रकार है:— गेहूं २२ फी सदी, टीन ४३ फीसदी, ऊन ४४ फी सदी, चावल ५२ फी सदी, निकल ८८ फी सदी, जूट ११ फी सदी। परंतु विलायत में केवल ५ सप्ताह ही अटने लायक अन्न सामग्री उत्पन्न होती है, इसलिये अन्य देशों से उसे बहुत बड़ी तादात में अन्न सामग्री आयात करनी पड़ती है। थोड़े ही दिन पहिले तक विलायत गेहूं रूस से और सूअर का गोश्त और डेअरी का माल डेनमार्क से मंगाता था। दूध और दूध से बनने वाली चीजें हालन्ड और बेलजियम से, काफी सीलोन से, चाय और चावल हिन्दुस्तान से उसे मंगाना पड़ता था। अब इतनी बाहर से आने वाली चीजों के दाम चुकाने के लिये उसे अपना माल बाहर भेजना आवश्यक है। १८७० और १८८० के दरम्यान विलायत में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये गये हुए हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों को प्रोफेसर मार्शल ने शिक्षण करते हुए पूंछा कि "आप लोग जापानियों की तरह व्यापारी शिक्षा न प्राप्त करके वैरिस्टरी और आइ. सी. एस की परीक्षाओं के ही पीछे क्यों पड़े रहते हैं"। उन्होंने यह भी कहा कि हम लोग तो हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों का स्वागत ही करते हैं क्योंकि वे अंग्रेज़ी संस्कृति का प्रचार अपने देश में करके विलायती माल का भी प्रचार करते हैं। और हमारे लिये यह बहुत आवश्यक है अगर हमारा माल बाहर नहीं जायगा तो हम खायेंगे क्या, लोहा और कोयला?

हमारे यहां इन चीजों के सिवा और होता ही क्या है !" आज भी विलायत की लगभग वही दशा है जो साठ वर्ष पूर्व थी। इसलिये विलायत हिन्दुस्तान पर आर्थिक प्रभुत्व कायम रखने के लिये बाध्य है। यह किसी को भी विचार न करना चाहिये कि विलायत ही हिन्दुस्तान का शोषण -र रहा है। इटली, जापान, जर्मनी, अमेरिका, हालन्ड और बेलजियम भी हिन्दुस्तान के व्यापार पर सिक्का जमाये हुए हैं। हिन्दुस्तान के समुद्री जहाजी व्यापार में पहिले चार देशों का ०·५ से ४ फी सदी हिस्सा है और ये देश भी अपने साथ अनेक वस्तुओं को जहाज को भारी करने के लिये ले आते हैं। जिन्हें कि यहां लागत से भी कम दाम पर बेंचते हैं। बेलजियम से यहां बड़ी तादात में वनस्पति घी आता है जिसे कि असली घी में मिलाने के काम में लाया जाता है। दिल्ली के स्टेट काउन्सिल में प्रश्न उठाया गया कि इस घी को रंगीन रक्खा जाय जिसमें कि इसमें और असली घी में भेद तुरन्त ज्ञात हो सके। कहा जाता है कि इसके जवाब में मि० कारवेट (आइ० सी० एस०) ने, जो उस समय व्यापार विभाग के सेक्रेटरी थे, कहा कि ऐसा करने से हमें, व्यापार मंत्री को और वाइसराय को भी अपने पदों से हाथ धोना पड़ेगा। कैसा विचित्र भय है ! तिस पर भी है सच, क्योंकि जैसे ही इस घी को रंगाना शुरू हो जायगा इसकी बिक्री गिर जायगी तो इसके जवाब में बेलजियम भी उसके यहां के दूध और दूध की चीजों में कठिनाई जारी कर देगा। फिर इनको ये चीजें कैसे मिल सकेंगी ? इसीलिये जनता का इतना विरोध होने पर भी वनस्पति घी को रंगीन बनाने का कोई कानून बनाने के लिये सरकार सहमत नहीं होती।

बहुत से राष्ट्र ब्रिटिश फर्मों के जरिये हिन्दुस्तान में व्यापार करते

हैं। ऐसी दशा में यदि इन राष्ट्रों की सुविधाएं कम कर दी जाती हैं तो ब्रिटिश फर्मों को भी नुकसान होता है। इस प्रकार अन्य राष्ट्रों का भी हिन्दुस्तान पर कम अधिक मात्रा में व्यारारी प्रभुत्व जमा है। इसलिये हम अन्य राष्ट्रों से बराबरी से तभी बातचीत कर सकते हैं जब कि हम पूर्ण स्वतंत्र हो जाय। एक समय था जब कि हिन्दुस्तानियों को अंदर की बात न मालूम थी पर अब हम अच्छी तौर से समझ गये हैं कि हिन्दुस्तान का उद्यम और व्यापार विलायत की इच्छा अनुसार ही योजित किया जाता है।

हिन्दुस्तान के राष्ट्रीयत्व का पुनरूद्धार करने के लिये सर्व प्रथम हिन्दुस्तान का पूरा व्यापार केवल हिन्दुस्तानियों ही के हाथ लाना चाहिये। सबसे पहिले हमें उन वस्तुओं को उत्पन्न करना चाहिये जिन्हें हम प्रतिदिन उपयोग में लाते हैं। हमारा बाहर भेजा हुआ प्रत्येक रुपया वहां के दस मनुष्यों का पेट भरता और २० हिन्दुस्तानियों को भूखों मारता है। अगर हिन्दुस्तानी सिर्फ देशी ही वस्तुओं का उपयोग करें, और खासकर देहातों की बनी हुई हों, तो संभव है कि हमारा एक भी आदमी बेकार न रहे। जब हम फैशन वाली गद्देदार सोफों और कुर्सियों को छोड़कर देशी गलीचे और कालीन इस्तेमाल करने लगेंगे; जब हम मिल के साफ किये हुए चावल के बजाय हाथ के कुटे चावल, चक्की के आटे की जगह जांते का आटा और कोल्हू का पिरा तेल का उपयोग करने लगेंगे; जब हम चमार का बनाया हुआ जूता और हाथ कता और बुना कपड़ा पहिनने लगेंगे; जब कि हमारे लोहार छूरे और कैंचियां और उस्तरे बनाने लगेंगे; जब धोबी ब्लीचिंग पाउडर को छोड़ देगा, जब बढ़ई के औजार देशी बनने लगेंगे;

जब सोनार पहिले की तरह खुद ही सोने का पत्र और तार बनाने लगेंगे और जब बैलगाड़ियों में हाल टायर की जगह मोटर-टायर न लगाये जाएंगे उस दिशा में हिन्दुस्तान में बेकारी बिलकुल ही न रहेगी। जब तक ये बातें नहीं होतीं बेकारी रहेगी और बढ़ती ही जायगी। कुछ लोग इन बातों को जीर्णोद्धार का प्रचार कह सकते हैं। क्रांति की तुलना में इससे हमें तुरंत ही लाभ होना प्रारम्भ हो जाता है परंतु क्रांति से होने वाला लाभ तो उसके सफल होने के बाद ही मिल सकता है, जिसके लिए अनिश्चित समय की आवश्यकता है। यह हमारी अनुभव की हुई योजना है जो कि पूर्ण सफल रही है। क्रांति कितनी भी वैज्ञानिक ढंग की क्यों न हो परंतु उसके सफल होने तक भूखों तो रह नहीं सकते। पाश्चात्य देशों में भी जहां कि कलों का ही प्रभुत्व है, लोग अनुभव करने लगे हैं कि अब कलों के प्रभुत्व से बहुत भयंकर नुकसान होने लगे हैं। पाश्चात्य राष्ट्र आज स्वावलंबी हो रहे हैं जिसका बोझ बेचारे गरीबों ही को सहना पड़ता है, परन्तु कुछ अमीरों की अमीरी बढ़ती ही जा रही है। इन अवगुणों को समझते हुए हमें हिन्दुस्तान में ऐसी आर्थिक प्रणाली स्थापित करना चाहिए जिसमें एक का बोझ दूसरे पर न पड़ सके। इस बात को ध्यान में रखते हुए हमें हिन्दुस्तान की आर्थिक स्थिति को समझने का प्रयत्न करना चाहिए कि किन ढंगों से हमारा व्यापार दूसरों के हाथ चला गया। सर जानसन (Secretary of State for Home in England) ने मरने के थोड़े दिन पहिले कहा, "प्रायः यह सुनने में आता है कि अंग्रेज़ हिन्दुस्तान को सभ्य बनाने के लिये वहां गए हैं, परन्तु सच तो यह है कि अंग्रेज हिन्दुस्तान में अपना माल बेचने की गरज से गए थे और

माल वेचने के लिए ही वहां रहे हैं।" हिन्दुस्तान और विलायत के झगड़े की भी यही जड़ है, क्योंकि हिन्दुस्तान के वगैर ब्रिटेन साम्राज्य नहीं रह सकता और इसलिए वह यूरोप में पहिले नंबर का शक्तिशाली भी नहीं हो सकता; और ऐसी दशा में खाने की चीजें और कच्चा माल भी उसे नहीं मिल सकता। तो हिन्दुस्तानियों के सामने सवाल यह है कि वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद को चालू रखना चाहते हैं या राष्ट्रीय संग्राम में भाग लेकर कष्ट सहन करके अपनी मातृ-भूमि में स्वराज्य स्थापित करना ? चाहते हैं।

—:o:—

परिशिष्ट अ

हिन्दुस्तानी-वृटिश व्यापारिक इकरार नामा

इकरारनामे का मसविदा

नई दिल्ली जनवरी १०,१९३५

कल लन्दन में इंगलैंड की वृटिश सरकार की ओर से सर वाल्टर रुन्सिमैन और भारत सरकार की ओर से सर बी० एन० मित्र द्वारा हस्ताक्षर किए हुए व्यापारिक इकरारनामे का मसविदा निम्नाङ्कित हैं जो ओटावा व्यापारिक इकरारनामे के परिशिष्ट रूप में है।

अवतरणिका

इंगलैंड की वृटिश सरकार और भारत की सरकार इस बात का इकरार करती हैं कि ओटावा व्यापारिक इकरारनामे के चालू रहने के समय तक इंगलैंड की वृटिश सरकार और भारत की सरकार की तरफ से किए हुए निम्नांङ्कित अहदनामे उस इकरारनामे का परिशिष्ट समझे जायंगे, जो ये हैं—

पहली शर्त—इंगलैंड की सरकार और भारत सरकार द्वारा यह बात मंजूर की जाती है कि जहाँ किसी भी देश के आयात के विरुद्ध भारतीय उद्योग धंधों का संरक्षण भारत की आर्थिक दृष्टि से आवश्यक हो सकता है, वहां भारत इंगलैंड और अन्य देशों में उद्योग

धंधों के अन्तर्गत ऐसी अवस्थाएं हो सकती हैं कि भारतीय उद्योग धंधों को इंगलैंड के आयात की अपेक्षा अन्य देशों के विरुद्ध अधिक ऊंचे संरक्षण की आवश्यकता हो सकती है।

दूसरी शर्त—इंगलैंड की सरकार इस बात को मंजूर करती है कि वर्तमान परिस्थितियों में भारत सरकार के राजस्व के लिए आयात-कर एक अनिवार्य वस्तु है। और आयात-कर की बढ़ती निश्चित करने में राजस्व का ख्याल अवश्य ही किया जाना चाहिये।

संरक्षण के सिद्धान्त

तीसरी शर्त—(१) भारत सरकार इसका अहद करती है कि केवल ऐसे ही उद्योग धन्धों को संरक्षण दिया जाय जिन्होंने, टेरिफ बोर्ड के द्वारा उचित जांच के बाद भारत सरकार की दृष्टि में, १६ फरवरी १९२३ को व्यवस्थापक सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव में उल्लिखित संरक्षण निर्धारित करने की नीति के अनुसार अपना हक कायम कर लिया हो, बशर्ते कि यह असहदनामा १९३० के संरक्षण कानून के आधीन उद्योग धंधों के संरक्षण में लागू नहीं होगा।

(२) भारत सरकार इस बात का भी अहद करती है कि संरक्षण के लिये मिलने वाले सुभीते इतने ही होंगे और इससे अधिक नहीं होंगे जितने से आयात की हुई चीजों की कीमत भारत में तैयार उसी तरह की चीजों की बिक्री की कीमत के बराबर होगी और जहां कहीं मुमकिन होगा इस शर्त की दफाओं का ख्याल रखकर इंगलैंड में तैयार माल पर कम दर की चुंगी लगाई जायगी।

(३) इस शर्त्त की पिछली दफाओं में बतलाए सिद्धान्त के अनुसार

एक ओर इंगलैंड के माल और दूसरी ओर अन्य देशों के माल के मध्य निश्चित की हुई कर की विभिन्नता द्योतक सीमा इंगलैंड के माल के प्रति हानि-कर होने के रूप में नहीं बदली जायगी।

(४) इस शर्त्त में शामिल अहदनामें ऐसे मामलों में भारत सरकार के अधिकारों पर हस्ताक्षेप नहीं करेंगे जिनमें वह आयात वस्तुओं पर प्रयोजित संरक्षण की अपेक्षा अधिक भारी अतिरिक्त राजस्व-कर लगाना आवश्यक समझती है।

मध्यकालीन जांच

चौथी शर्त्त—जब भारतीय उद्योग धन्धे को भारी संरक्षण देने का प्रश्न जांच करने के लिए टेरिफबोर्ड के सामने लाया जाय तो भारत सरकार इंगलैंड से सम्बन्धित किसी उद्योग धन्धे को अपना मामला समझने और अन्य सम्बन्धित दलों द्वारा उपस्थित किए हुए मामलों की छानबीन करने देने का पूरा अवसर देगी। भारत सरकार इस बात का भी अहद करती है कि संरक्षण की अवधि के प्रचलित रहते समय संरक्षित उद्योग धन्धों को प्रभावित करने वाली अवस्थाओं में भी भारी परिवर्त्तन उपस्थित करते समय वह ब्रिटिश सरकार की प्रार्थना पर अपनी ही इच्छा से इस प्रकार की जांच बैठाएगी जो तीसरी शर्त्त में दिए हुए सिद्धांत की दृष्टि से चालू करों के उचित अनुचित होने पर विचार करेगी और ऐसी जांच के समय ऐसे प्रतिवाद पर पूर्ण विचार किया जायगा जो इंगलैंड के किसी सम्बन्धित उद्योग धन्धे द्वारा किया जायगा।

पांचवीं शर्त्त—इंगलैंड की सरकार उन उपायों पर पूरा ध्यान देगी

जो सम्बन्धित व्यापारिक स्वार्थों के सहयोग में भारत से कच्चे व अधकच्चे माल के आयात की उन्नति करने के लिए किए जांय, जो इस तरह चीज़ों के तैयार करने में इस्तेमाल होती हैं जिनका भारत में आयात भिन्नता द्योतक संरक्षण कर के आधीन है। विशेषतया वे भारत सरकार को उन उपायों पर ख्याल रखने के लिए प्रार्थना करती हैं जो भारतीय रूई की खपत का क्षेत्र वढ़ाने की दृष्टि से ओटावा इकरारनामे की आठवीं शर्त्त के अनुसार इंगलैंड में की जा चुकी हैं, और वे भारतीय रूई की खपत प्रत्येक सम्भव तरीके से जिनमें शिल्प-वैज्ञानिक शोध, व्यापारिक खोज, विक्रय क्षेत्र की वृद्धि और औद्योगिक प्रचार-कार्य आदि का भी समावेश है, वढ़ाने के लिए व्यापारिक व्यक्तियों के सहयोग से वह सभी सम्भव उद्योगों को जारी रखने का अहद करती हैं।

छठीं शर्त्त—इंगलैंड की सरकार अहद करती है कि पिछली शर्त्त के सिद्धांत के अनुसार इंगलैंड में कर के विना भारत का कच्चा लोहा पहुंचने का विशेषाधिकार उस समय तक प्रचलित रहेगा जब तक कि भारत में आयात लोहे और इस्पात पर शर्त्त के अनुसार लगा हुवा कर इंगलैंड के लिए १९३४ के लोहा और इस्पात संरक्षण कानून में दी हुई सुविधाओं की अपेक्षा कम सुविधा-जनक न हों। हां १९३४ के लोहे और इस्पात कर कानून की दूसरी धारा द्वारा संशोधित १८९४ के इंडियन टैरिफ एक्ट की उपधारा ३ (४) और ३ (५) की सुविधाओं के अधिकारों पर हस्तक्षेप न किया जायगा।

सातवीं शर्त्त—इंगलैंड की सरकार और भारत सरकार इस बात का अहद करती हैं कि इस इकरारनामे से सम्बन्ध रखने वाले सभी

मामलों में वे हमेशा उन सब नतीजों, इकरारनामों और विवरणों को सुनेंगी और विचार करेंगी जो इंगलैंड और हिन्दुस्तान से सम्बन्ध रखने वाले उद्योग धन्धों के मुख्य प्रतिनिधियों के सम्मेलन के परिणाम स्वरूप निश्चित होंगी।

इकरारनामा

ओटावा व्यापारिक इकरारनामे के परिशिष्ट के उपपरिशिष्ट की भाँति जो पत्र-व्यवहार सरवाल्टर रुन्सिमैन, इंगलैंड के बोर्ड आफ ट्रेड के सभापति तथा सर बी० एन० मित्र, इंगलैंड में भारत के हाई कमिश्नर के बीच हुआ वह छापा जा रहा है:—

सर वाल्टर रून्सिमैन के पहले खत में लिखा है:—"महोदय, इंगलैंड की सरकार की ओर से मुझे यह अहद करने का अधिकार दिया गया है कि यदि किसी समय उपनिवेशों और रक्षित राज्यों द्वारा अन्य देशों से सूती माल के मुकाबिले में इंगलैंड के सूती माल को सहूलियत देने के लिए कोई और व खास तरजीह दी जायगी तो वे ऐसी तरजीह हिन्दुस्तान के ऐसे सूती माल को दिलाने की ओर उपनिवेशों और रक्षित राज्यों की सरकारों का ध्यान खींचेंगे जिस तरह के इंगलैंड के सूती माल के लिए तजवीज की जायगी। ऊपर का अहदनामा उस वक्त तक लागू रहेगा जब तक कि लंकाशायर के नुमाइन्दों और बम्बई के मिल-मालिकों के संघ-समिति के बीच २८ अक्टोबर १९३० को हुआ इकरारनामा लागू रहेगा या कोई भी बाद का इकरार नामा लागू रहेगा जो दोनों मुल्कों के सूती रोज-गारियों के बीच तै हो।"

सर वाल्टर रुन्सिमैन के पत्र का जवाब देते हुए सर बी० एन० मित्र कहते हैं:—

"आपके आज की तारीख नम्बर एक के पत्र की पहुँच स्वीकार करने का हमें सौभाग्य है। हिन्दुस्तान की सरकार की ओर से मुझे अहद करने का अधिकार मिला है कि ज्योंही द्वितीय अतिरिक्त कर सामान्य रूप से हटा दिया जाता है त्योंही इगलैण्ड के सूती माल पर का आयात-निर्यात कर घटा कर २०% मूल्यानुसार या साढ़े तीन आना प्रति पौंड सादे कपड़े पर और २०% मूल्यानुसार दूसरे मालों पर कर दिया जायगा बशर्ते कि लंकाशायर के नुमाइन्दों और बम्बई के मिल-मालिकों के संघ के बीच हुए २८ अक्टोबर १९३० के इकरारनामे की अवधि खतम होने पर संरक्षण की शेष अवधि में इगलैण्ड के माल की चुंगी उस समय के हालतों की जांचकर और जो अनुभव प्राप्त किये जा चुके हों उसके अनुसार तै की जायगी। द्वितीय अतिरिक्त कर के साधारण रूप से हटाये जाने का मतलब यदि सब नहीं तो उचित रूप से अधिकांश चीजों पर से अतिरिक्त कर का घटाना है जिन पर वे लगे हों।"

ह: बी० एन० मित्र।

सर बी० एन० मित्र के पत्र को स्वीकार करते हुए सर रुन्सिमैन कहते हैं।

"आज के तारीख के पत्र नम्बर २ की पहुँच स्वीकार करने का मुझे सौभाग्य है।"

द: रुन्सिमैन

—::—

परिशिष्ट (ब)

विदेशी शोषण के प्रतिकार के लिए ईरान के संरक्षण।

ईरान के इम्पीरियल बैंक के ५ अक्टोबर १९३० के पत्र का उद्धरण।

मूल्य चुकता पाने में थोड़ी सी कठिनाई इस कारण होती है कि इस सूची से बाहर की चीजों के लिए विनिमय प्राप्त करने का अधिकार पत्र कुछ मामलों में विनिमय नियंत्रणसमिति (Exchange control commission) से लेने की आवश्यकता होती है। साथ में लगी हुई सूची से उल्लिखित वस्तुओं के लिए ही यह अधिकार पत्र लेने की आवश्यकता होती है। जिन वस्तुओं का नाम इस सूची में नहीं है और जो देश के आयात का अधिकांश भाग हैं उनके विनिमय को क्रय करने में कोई बन्धन नहीं है।

कठिनाई इस बात में है कि बाजार में विदेशी विनिमय की पूर्ति अनेक कारणों से मांग को पूरा करने के लिए बिलकुल अपर्याप्त होती है और बैंक उसी हद तक विक्रेता होते हैं जितनी वस्तु की मात्रा वे तैय्यार पा सकते हैं। विनिमय नियंत्रण समिति का कार्य मुख्यतया उपर्युक्त सूची में की वस्तुओं के आयात के लिए विदेशी विनिमय क्रय करने के लिए आये हुए आवेदन पत्रों की छान-बीन करना है और वास्तविक विदेशी विनिमय की व्यवस्था से उसका कोई मतलब नहीं।

चुकौता प्राप्त करने के लिए वैकल्पिक साधन निम्न प्रकार हैं:—

(अ) विनिमय कानून (Exchange Law) की तारीख पहिली मार्च १९३० के पहले हुए शर्तनामे।

(ब) शर्तनामे जो कि १ मार्च १९३० के बाद हुए किन्तु जिसके सम्बन्ध का माल या तो अब भी ईरान के चुंगीघर (Custom House) में हैं, ईरान के मार्ग में है या अभी जहाज पर रवाना नहीं हुआ।

(स) शर्तनामे जो १ मार्च १९३० के बाद हुये किन्तु जिनके सम्बन्ध का माल देश में पहुँच चुका है।

(अ) की हालत में—

तेहरान में विनिमय नियंत्रण समिति के पास, निम्नाङ्कित दावे के दायरे के अन्दर, ईरान से निर्यात करने की आज्ञा पाने के लिये आवेदन पत्र भेजा जा सकता है:—

१—गलीचा, अफीम, गोंद—(Gum tragacanth) को छोड़ कर कोई भी चीज़।

२—चांदी के सिक्के जो विकृत कर दिये है।

(ब) की हालत में—

इस देश से माल को निर्यात करने वालों के लिए यह लाज़िमी है कि वे निर्यात से प्राप्त विदेशी विनिमय के ४०% को ही बैंक के हाथ बेंचें बशर्ते कि वे उस माल को ५०% तक ही आयात करते हैं जो सूची में दर्ज नहीं है जिसके लिए आज्ञा लेनी पड़ती है।

इसके लिए नियंत्रण समिति की आज्ञा की आवश्यकता नहीं होती केवल इतना नियम पालन करना पड़ता है कि चुंगीघर पर एक प्रश्नावली को भरना पड़ता है और सिर्फ खर्च पूरा करने के लिए

२०% बढ़ा दिया जाता है।

विशेष सूचनाः—

कुछ माल इस तरह के हैं जिनमें बैंक के हाथ विनिमय वेचने की आवश्यकता नहीं होती बशर्ते कि ९०% माल विनिमय में आयात किया गया हो। इस ६०% में से २०% से अधिक माल उस माल का नहीं होना चाहिये जो साथ की सूची में दर्ज है। उपर्युक्त मालों के भेद बहुत कम हैं और देश के विनिमय उत्पन्न करने वाले निर्यात के २०% से अधिक नहीं हैं।

२—नियंत्रण समिति की आज्ञा से विक्रत किये जाने के बाद चांदी का सिक्का निर्यात किया जा सकता है और निर्यात से प्राप्त विदेशी विनिमय को वेचने का बन्धन नहीं है बशर्ते कि ९०% तक माल विनिमय में आयात किया जाय। इन ९०% प्रतिशत से वह माल ४५% से अधिक अनुपात का नहीं होना चाहिये जो कि साथ की सूची में दर्ज है। निर्यात चांदी के मूल्य में ऊपर के दफा १ की हालत के अनुसार १०% की वृद्धि न की जायगी।

(स) की हालत मेंः—इस समय चुकौता करने के लिए कोई व्यावहारिक साधन नहीं है किन्तु यह प्रश्न विचाराधीन है और हम इस सम्बन्ध में निकट भविष्य में आदेश देने की आशा रखते हैं।

१—चांदी के निर्यात के सम्बन्ध में यह जानना चाहिये कि प्रति अंग्रेजी पौण्ड ६० क्रान्स के आधुनिक सरकारी विनिमय दर में क्रान में की चांदी के वास्तविक धातु के मूल्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। आजकल के चांदी के बाजार दर पर एक अंग्रेजी पौंड प्राप्त करने के लिए लगभग १०० क्रान्स निर्यात करने की आवश्यकता पड़ेगी।

मालों की सूची जिनकी कीमत चुकता करने के लिए विदेशी विनिमय के खरीदने के लिए नियंत्रण समिति द्वारा आज्ञा प्राप्त करने की आवश्यकता है:—

सब तरह के जानवर, सब तरह की लकड़ी, जलाने की लकड़ी मिला कर पीने की शराब, दवा की शराब छोड़ कर, लकड़ी का कोयला और पत्थर का कोयला, ताज़ा और नमक लगाया हुआ मक्खन, छोटे डब्बों में संरक्षित मक्खन छोड़ कर, चावल, गेहूं, जौ, जई और अन्य सभी खाने की दालें, खाने का आटा, रोटी, ताजे और सूखे फल, ताजा दूध, जमाया हुआ दूध भी, ताजी तरकारियां, सिले हुए कपड़े, पोशाक, सब तरह की शृंगार की चीजें, बाजे और उनके अलग २ पुर्जे, कपास, रेशम के कोए, कच्चा रेशम और रद्दी रेशम, हर तरह के कम्बल, और गलीचे, गोटे का काम और हर तरह का काम, कसीदे का काम और बेल बूटा निकाले हुए कपड़े मय सलमे सितारे के और बढ़िया कसीदा निकाले हुए कपड़े, हर तरह के नकली या असली कुदरती रेशम के धागे, फोटो ग्राफ और सिनेमा के यंत्र तथा कल-पुर्जे, कच्चा धागा और रद्दी रेशम का धागा, खेल के सामान और खिलौने, पढ़ाने के काम के छोड़ कर नकली जवाहिरात, ताश, घर सजाने के सामान मामूली लालटेनों को छोड़ कर, जवाहिरात और सोने चांदी के काम, कला और संग्रह की चीजें, हर तरह का तेल फुलेल, कच्चा चमड़ा, सूखा व नमक लगाया हुआ और रोंयेदार पोशाक के लिए तैय्यार किया हुआ चमड़ा, हर तरह के पत्थर मय हीरे इत्यादि और मोतियों के, हर तरह के चीनी मिट्टी के बरतन, सुगन्धित साबुन हर तरह के शीशे और आईने, शीशे और बिल्लौर की सभी चीज़ें, सब सब तरह की गाड़ियां।

ईरान के इम्पीरीयल बैंक के ७ अक्टूबर १९३० के पत्र का उद्धरण :—

उपर्युक्त पत्र के पृष्ठ २ की टिप्पणी के प्रसंग में नियंत्रण समिति ने निश्चय किया है कि यदि इस बात का सबूत दिया जाय कि पहिली मार्च १९३० के बाद मंगाने की आज्ञा भेजे हुए माल इस मुल्क में उस तारीख और २२ जुलाई १९४० के बीच दर असल में पहुंच गए हों तो, वे ऐसे आयात पर विचार करेंगे जिसमें निर्यात से प्राप्त विनिमय का ५०% तक माल आयात करने की शर्त पूरी की गई होगी। (५ अक्टोबर १९३० के हमारे पत्र का दफा (ब) (१) पृष्ठ २ देखो) बशर्तें कि ऐसे निर्यातों में ग़लीचे, अफीम, या गोंद—न हो।

नियंत्रण समिति ऐसे आयात पर भी विचार करेगी जो चांदी के निर्यात से प्राप्त ९०%तक आयात माल की शर्त को पूरा करता होगा। (हमारे ५ अक्टोबर १९३० के पत्र का दफा ब (२) पृष्ठ २ देखो।)

अतएव जो माल मंगाने की आज्ञा १ मार्च १९३० के बाद भेजी गई हो और जो ईरान में २२ जुलाई १९३० के पहले पहुंच गई हो उसकी क़ीमत का चुकौता प्राप्त करने के लिए साधन उपर्युक्त हैं। (५ अक्टोबर १९३० के हमारे पत्र का दफा (स) पृष्ठ २ पर देखो।)

२२ जुलाई वह तारीख मानी गई है जिस दिन ५ अक्टोबर १९३० के हमारे पत्र में पृष्ठ २ के दफा २ के अनुसार विस्तृत निर्यात नियम लागू हुए इसलिए २२ जुलाई १९३० के बाद देश में आया हुआ आयात उपर्युक्त नियमों के आधीन समझा जायगा।

परिशिष्ट स

हाउस आफ लार्डस के हाथ में भारी व्यवसाय।

(सन् १९२८ की संख्या)

नं०	रोजगार	डाईरेक्टरों की संख्या	कितनी कंपनियों का प्रतिनिधित्व करते हैं?	चेयरमैन, गवर्नर या डिप्टी चेयरमैन कितने हैं?	विशेष विवरण
१	कृषि सम्बन्धी कम्पनियां	७	६		
२	बैंक का धंधा—	९३	४४	१४	(२)एक बैंक के नौ डाइरेक्टर बहुतों के ५ हैं बहुतों के ३ हैं
३	शराब बनानेवाली कंपनियों के	३०	२२	१२	
४	सीमेन्ट और मकान बनाने के सामानों के	९	५		
५	नहरों के	९	५		
६	रासायनिक पदार्थ	३६	३०	१४	
७	रूई पैदा करने का व्यवसाय	५	३		
८	बिजली और यांत्रिक बल	२६	२०	६	
९	जहाजी स्टेशन (Docks)	९	९		
१०	इंजिनियरिंग और गाड़ी बनाने				

	के कारखाने	४४	३८	८	
११	आमोद-प्रमोद	१०	९	४	
१२	आय और व्यय	६१	४४		(१२)एक कम्पनी के ५ डाइरेक्टर हैं और अन्य ४ कम्पनियों के प्रत्येक तीन-तीन हैं।
१३	खाद्य पदार्थों की कम्पनियां	१७	१५	६	
१४	गैस की कम्पनियां	६	५		
१५	भोजनालय-विश्रान्तिगृह Hotels-Restaurants,etc.	१०	१०		
१६	बीमा कम्पनियां	१३१	६८	२९	(१६)एककम्पनी के १० डाइरेक्टर हैं दो के प्रत्येक के ६, के ५, और चार कम्पनियों के एक प्रत्येक के चार-चार हैं।
१७	लोहा कोंयला और फौलाद	७८	७०	३७	
१८	जमींदारी कम्पनियां	६८	६४		
१९	व्यापारी और व्यापार करने वाली कम्पनी के	८	८	६	
२०	धातुयें आदि	९	९	५	
२१	सोना-हीराजात खदानों की खुदाई, अन्वेषण आदि	६८	५८	२१	
२२	मोटरकार और वाइसिकिल	१२	१२	६	
२३	समाचार पत्रादि	१९	१९	१२	

नं०	रोजगार	डाइरेक्टरों की संख्या	कितनी कंपनियों का प्रतिनिधित्व करते हैं ?	चेयरमैन, गवर्नर या डिप्टी चेयर-मैन कितने हैं ?	विशेष विवरण
२४	तेल	७३	७३		(२४) एक आदमी ४५ डाइरेक्टरों के पद का अधिकारी है जिसका नाम 'बिस्काउन्ट वियर स्टेड' है।
२५	कागज बनाना	६	६		
२६	बगान (चाय और रबर के बगान)	२०	१८	९	
२७	रेलवे	६७	४५	२५	(२७) इन कम्पनियों में से २९ विदेशों के लिये ही हैं।
२८	जहाज बनाने की कंपनियां	८	८		
२९	जहाज चलाने की कंपनियां	७२	५०	३६	(२९) एक आदमी अकेले ४२ कम्पनियों का डाइरेक्टर है। उसका नाम है लार्ड किलसेन्ट
३०	तार, टेलीफोन और समुद्रीतार	२२	१८	४	
३१	बुनाई का रोजगार	१३	१३	४	
३२	ट्राम्वे, लारियां	१०	९	५	
३३	ट्रस्ट (Trusts)	४८	४१	१७	
३४	फुटकर कम्पनियां	७२	६७	१९	